निरन्तर

८१३.३
भग/नि-१

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

हिन्दी समिति
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन
१९

निरन्तर

निरन्तर

मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखक

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

यंग मैन एण्ड कम्पनी

नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक यंग मैन एण्ड कम्पनी, नई सड़क, दिल्ली

प्रथम संस्करण १९५७
मूल्य तीन रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक डिलाइट प्रेस, चूड़ीवालान, चावड़ीबाजार, दिल्ली

विशेषता

ईर्ष्या-द्वेष सभी व्यक्तियों में होता है। किसी में कम, किसी में अधिक। स्वाभिमान तो मनुष्य का भूषण है, उसके बिना शान्ति सम्भव नहीं। परन्तु यह समझ लेना कि मैं ही सबसे बड़ा और महान हूँ, अतः जो मेरी आरती नहीं उतारता, मेरी वन्दना नहीं करता, वह मेरा हो नहीं सकता, एक भ्रम है। और यह भ्रम जब तक दूर नहीं हो जाता, तब तक आत्म-शुद्धि कदापि सम्भव नहीं है।

कुछ लोग उपकार करते हैं। उन्हें इसकी प्रसन्नता भी होती है। उन्हें प्रसन्न रहना भी चाहिये। किन्तु उपकार के

नाम पर जो लोग अपना कोई विशेष स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, वे बाँह में छिपे हुए उस सर्प के समान हैं, जो अवसर पाते ही डस लेता है।

यदि कोई यह सोचता है कि बहुत पढ़कर या ज्ञानवान बनकर, मैं जीवन में सफल हो जाऊँगा, लोग मेरा आदर करेंगे और अन्त में मैं अपना एक आदर्श छोड़ जाऊँगा, तो यह उसकी मूढ़तम कल्पना है, जो तरुणवृन्द को फुसला-फुसलाकर उसे सदा एक भ्रम में डाले रहती है और अन्त में उसकी सारी उन्नति रोक देती है। कोई भी व्यक्ति स्वप्न देख-देख कर चरित्रवान नहीं बन सकता। चरित्र का निर्माण तो अपने आप को गढ़-गढ़कर, ढाल-ढालकर, करना होता है। कर्तव्य के प्रति निष्ठा, संयम और सदाचार के प्रति श्रद्धा, सत्य के प्रति अनुराग, ज्ञान के प्रति एक सतत जिज्ञासा और मानवता के उत्कर्ष के प्रति एक दृढ़ आस्था ही महान चरित्र के निर्माण का मुख्य आधार है।

राष्ट्र के नव-निर्माण की इन पावन घड़ियों में, इन्हीं सब भाव-वृत्तियों को लेकर मैंने इस मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास की रचना की है। मैंने मनोग्रन्थियों के समाधान और निराकरण के कतिपय ऐसे प्रयोग दिखलाये हैं, जो भूले-भटकों को उचित जीवन-मार्ग पर आरूढ़ कर देने में सफल होकर रहे हैं। मैंने संयम और संतुलन पर बल दिया है। मानवी

दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने की विधियाँ स्पष्ट की हैं, उस चरित्र-निर्माण का क्रम-विकास दिखलाया है, जिसकी निष्ठा विधा से एक साधारण प्राणी भी महान बनकर अपने आपको चिरस्मरणीय बना सकता है।

मंगलपुर
जिला कानपुर
१५-११-५७

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

१

अपेक्षित प्रसन्नता, जिसका एक निश्चित आधार होता है, प्रायः मूक रहा करती है। किन्तु आकस्मिक प्रसन्नता, जिसमें आवेग अधिक होता है, तुरन्त प्रकट हो जाती है।

महेश का पत्र पढ़ते-पढ़ते परमेश्वरीलाल पुलकित हो उठे। तुरन्त घर के अन्दर आकर बोले—"अरे सुनती हो ?"

पत्नी के केश अब खिचड़ी हो चले थे। सामने का एक दाँत कृत्रिम था। कई दाढ़ें हिलने लगी थीं। स्वामी का स्वर सुनकर भण्डार-गृह से बाहर निकलती हुई बोली—"क्या ?"

परमेश्वरीलाल ने देहरी के भीतर ही ठहरते हुए कहा—"बच्चा की चिट्ठी आ गई, उसकी नौकरी पक्की हो गई।"

"पक्की हो गई !" आश्चर्य के साथ कमलेश्वरी ने उत्तर दिया।

"हाँ, अभी-अभी चिट्ठी मिली है। वैसे आयी तो कल शाम की डाक से थी।·····आज त्रिवेदीजी के घर एक सीधा भिजवा देना और महरी और मेहतर को पाव-पाव भर मिठाई। ·····मगर ठहरो।"

कथन के साथ मुर्री में हाथ लगाते हुए उन्होंने कह दिया—"दो रुपये की मिठाई—यह लो—मँगवाकर घर तथा पास-पड़ोस में बटवा देना।"

कमलेश्वरी ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"नौकरी लगने की खुशी में बच्चा के इष्ट-मित्र भी तो शामिल होंगे। अच्छा तो यह होगा कि जब वह आ जाय, तभी यह मिठाई बाँटी जाय।"

अपने इस पुत्र के सम्बन्ध में परमेश्वरीलाल कोई बात जब एक बार निश्चित कर लेते, तब उसमें फिर कोई संशोधन स्वीकार न करते थे। उन्होंने उत्तर दिया—"बच्चा के लौटने में आठ-दस दिन लग गये, तो क्या हमारी प्रसन्नता तब तक रुकी रहेगी! नहीं, ऐसा नहीं होगा। मिठाई आज ही बटेगी।"

घर में कुल पाँच व्यक्ति थे। दो—पति-पत्नी—वे स्वयं और तीन बच्चे। बड़ा लड़का महेशप्रसाद एम० ए० की परीक्षा देकर एक इण्टरव्यू के सिलसिले में नैनीताल गया हुआ था। छोटा सुरेशप्रसाद मैट्रिक की परीक्षा दे चुका था। बीच की थी सरोज, जिसका गौना अभी हाल ही में हुआ था।

परमेश्वरीलाल अपनी बात कहकर बाहर जाने लगे, तो एक कुत्ता दरवाज़े की देहरी पर आकर उनके पैर सूँघने लगा। उन्होंने उसके सिर के बढ़े हुए मुलायम केशों पर हाथ फेरते हुए कह दिया—"समझ गया, समझ गया। तेरा भी ध्यान रखा जायगा।"

कुत्ता और भी तेज़ी से पूँछ हिलाने लगा।

सरोज कमरे से बाहर आकर बोली—"अम्मा, भैया की चिट्ठी कहाँ है ?"

नतशिर कमलेश्वरी उस समय थाली में दाल बीनती हुई सोच रही थी—'जब सुरेश का ब्याह हो जायगा, बहू घर में आ जायगी, तभी मुझे सच्चा सुख मिलेगा। मेरा यह दाल-बाल बीनना—कि सरोज की बात कान में आ पड़ी। फलतः उसकी तर्जनी रुक गयी। सिर उठाकर बोली—"चिट्ठी उन्हीं के पास होगी।" और फिर दाल के दाने खिसकाने लगी।

सरोज द्वार पर जा पहुँची।

मुख्य द्वार पर, देहरी के उस पार, मार्ग के दायें-बायें, छोटे-छोटे बरामदे और फिर कमरे थे। दाईं ओर के बरामदे में चारपाई पड़ी हुई थी। परमेश्वरीलाल उसी पर बैठे हुए एक नवयुवक से बातें कर रहे थे।

सरोज देहरी तक पहुंचती हुई सहसा ठिठुक गयी।

हेमचन्द्र उत्तर की ओर उन्मुख होकर चारपाई पर बैठा हुआ था। उसके हाथ में एक दैनिकपत्र था।

गौने के बाद सरोज की दृष्टि पहली बार हेमचन्द्र पर पड़ी थी। पहले तो वह संकोच से नतमुखी हो उठी, फिर कमलदल से पलक उठाती हुई पिता को लक्ष्यकर बोली—"बाबू, भैया की चिट्ठी ?"

जेब से चिट्ठी निकालकर परमेश्वरीलाल ने सरोज की

ओर बढ़ा दी।

बिना कुछ बोले, लेकिन एक बार कमल-नयनों की कोर हेम पर डालती हुई सरोज चिट्ठी लिये अन्दर चली गई।

हेम का मन बुझा-बुझा-सा रहता था। बारम्बार उसके अन्तर से यही स्वर निकला करता—'सरोज दूसरे की हो गई है। अब मेरे लिये इस संसार में क्या है? यह सब जानकर भी मैं उसी के द्वार पर आ बैठता हूँ। क्या मेरे लिये यह लज्जा की बात नहीं है?'

मकान में आग लग जाती है तो फ़ायर-ब्रिगेड बुलानी पड़ती है। पर मन की अग्नि शान्त करने के लिये आत्मा के रसार्णव का एक बूँद यथेष्ट होता है।

हेम सोचने लगा—'यह लाज मेरी अपनी है। मैं इसे सीधे परम-पिता के पास भेज दूँगा। ऐसा संसार उसने बनाया ही क्यों, जिसमें मनुष्य इस सीमा तक असहाय है कि.....!'

उसकी आँखें डबडबा आयीं।

इसी समय परमेश्वरीलाल बोल उठे—"अरे हेम, तुम्हीं न बच्चा को चिट्ठी लिख दो कि वह झट लौट आये। घर छूटे पूरा महीना बीत गया।"

आत्मलीन हेम कुछ चौंकता हुआ-सा बोला—"ऐं! चिट्ठी? अच्छा लाइये, मैं ही लिख दूँ।"

यद्यपि उसे कुछ पता नहीं था कि परमेश्वरी चाचा यह चिट्ठी क्यों लिखा रहे हैं?

इतने में सुरेश आ पहुँचा। परमेश्वरीलाल बोले—"जाओ, अपनी अम्मा से दो रुपये ले लो और बाज़ार से मिठाई ले

आओ। बच्चा की नौकरी तै हो गई। नैनीताल से उसकी चिट्ठी आ गई। सरोज अभी ले गई है।"

सुरेश झोले में साग-भाजी लिये हुए था। प्रसन्न होकर रुकता हुआ बोला—"मैं जानता था—इस बार भैया अवश्य सफल हो जायँगे। पर उन्होंने यह नहीं लिखा कि वे कब तक लौटेंगे ?"

परमेश्वरीलाल बोले—"जान पड़ता है और दो-चार दिन घूमकर लौटेगा।"

सुरेश अन्दर चला गया।

हेमचन्द्र जेब से फ़ाउन्टेनपेन निकालकर सामने रखे दैनिक-पत्र पर लिख रहा था—फूल हँसते-खेलते; पवन-झकोरों से झूमते रहते हैं। काँटों को मुसकाना तक नसीब नहीं होता; जबकि वे उसी टहनी के पास, चुपचाप, इकटक खड़े सब देखते रहते हैं।

क्रान्तिकारी कभी पीछे नहीं देखता, किन्तु विचारशील व्यक्ति तूफान के समय भी हवा का रुख देखता रहता है।

हेम आगे बढ़कर सोचने लगा—"लेकिन फूल मुरझा-मुरझाकर, सूखकर कितनी जल्दी मिट जाते हैं! काँटों का बाल भी बाँका नहीं होता।'

परमेश्वरीलाल ने कमरा खोलकर अलमारी से पोस्टकार्ड निकाला और हेम को देते हुए कह दिया—"चिट्ठी में तुम अपनी ओर से लिख देना कि सब लोग उत्सुकता के साथ तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

सरोज अन्दर जाकर भाई का पत्र पढ़ती-पढ़ती सोच रही थी—'बाबू ने आज इनको अन्दर क्यों नहीं भेजा ?'

सुरेश ने अन्दर जाते ही पूछा—"भैया की चिट्ठी कहाँ है ?"

चिट्ठी सरोज ने सुरेश को दे दी। फिर बिखरे केशों की लट सिर की केश-राशि से मिलाती हुई प्रसन्नता के साथ बोली—"बड़ी अच्छी चिट्ठी है। लिखा है—मार्ग में झाड़ियाँ हैं, खड्ड हैं, ऊँचे-ऊँचे गगन-चुम्बी पर्वत हैं; पर्वतों पर सघन वृक्षावली। वृक्ष भी कैसे ? एकदम सीधे, ऊँचे-से-ऊँचे, उठते चले गये हैं। मार्ग कहीं सीधा, कहीं टेढ़ा, कहीं चढ़ता और कहीं उतरता हुआ। किन्तु है तो अन्ततोगत्वा पर्वत-पथ ही। ऊँचे उठना ही उसका धर्म है—मेरी महत्वाकांक्षा की भाँति। —पढ़कर एक झकोरा आ जाता है कि क्या करूँ, जो झट से मैं भी नैनीताल पहुँच जाऊँ।"

सुरेश ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"क्या मुश्किल है ? जीजा अगर चाहते, तो इस समय तुम नैनीताल में ही होतीं।"

सरोज संकुचित हो उठी। उसके मन में आ रहा था—"हूँ, अकेले उनके चाहने से क्या होता है !"

सुरेश साग का झोला माँ के पास रखकर कहने लगा—"अम्मा, लाओ रुपया दो, मिठाई ले आऊँ। बाबू ने कहा है।"

कमलेश्वरी ने नोट अपने अंचल में बाँध लिया था। गाँठ खोलकर सुरेश को वही नोट देती हुई चुपके-से बोली—"मिठाई डेढ़ रुपये की ले आना। आठ आना हमको लौटा देना।" फिर थोड़ा रुककर साथ में धीरे से यह भी कह

दिया—"पैसे लौटा ज़रूर देना। तेरा गोलमाल मुझे अच्छा नहीं लगता।"

सुरेश ने नोट हाथ में लेकर फुसफुसाते हुए उत्तर दिया—"पर इस बचत में आधा साझा हमारा भी रहेगा अम्मा।" और कथन के साथ ही हँस पड़ा।

सुरेश की इस चालाकी को लक्ष्यकर कमलेश्वरी गम्भीर होकर बोली—"अभी से साझा-वाझा सोचने लगा शैतान। यह नहीं समझता कि काम पड़ने पर जब रुपयों की कमी का सवाल उठता है, तब उसकी पूर्ति कहां से होती है और फिर कौन करता है?"

सुरेश किसी विरोधी तर्क को जल्दी न मानता था। दूसरा पक्ष न देखकर वह झट अपने उद्योग की कील जड़ने लग जाता।

उसने कह दिया—"अच्छा चौथाई ही सही। जाओ, दो आने पर समझौता करता हूँ।"

थाल के ऊपर रेंगती हुई कमलेश्वरी की तर्जनी रुक गई। सुरेश की बात सुनकर वह मुसकराती हुई बोली—"ऐसा ही है, तो दो आने पैसे ले लेना।"

सुरेश चला गया। वह उस समय यह सोचता हुआ बड़ा प्रसन्न हो रहा था कि पीछे पड़ जाओ तो सफलता अवश्य मिलती है।

एक काला भँवरा भन्-भन् करता हुआ उड़ रहा था। सरोज उसे देखकर एकदम ठिठक गयी। उसकी ओर अनुराग से देखकर मन-ही-मन उससे कहने लगी—"अब क्या हो सकता

है ? उड़ना भी एक अवसर पर ही सफल होता है मधुप ।"

भँवरा दक्षिण की ओर बढ़ गया और सरोज स्नानागार की ओर चल दी ।

हेम पत्र लिख चुका था ।

परमेश्वरीलाल ने कह दिया—"अब इस पत्र को तुम्हीं लेते जाना हेम । रास्ते में कोई पत्र-पेटी मिलेगी ही, उसी में छोड़ देना ।"

हेम निःश्वास लेता हुआ सोच रहा था—'सरोज दूसरे की हो गयी है । अब उसे मुझसे मिलने-जुलने की क्या आवश्यकता है ? हो सकता है, वह अब मेरी छाया से भी दूर रहना चाहती हो । माना कि मैंने नहीं पूछा था—'कब आयी सरोज ? अच्छी तो हो ?' पर उसको तो कुछ कहना चाहिये था । इतना ही पूछा होता—'आजकल क्या करते रहते हो दद्दा ? पर उसने मेरी ओर देखा तक नहीं ।'

उसे फिर ध्यान आ गया—'वह दूसरे की हो गयी है ।'

पर इस बात के ध्यान मात्र से हेम का समाधान न हुआ । उसे प्रतीत होता था, यह मुझे चुनौती दी गई है । मुझसे कहा गया है कि जीविकाहीन व्यक्ति होकर तुम कुछ नहीं हो ।

अन्त में वह उठकर खड़ा हो गया । एक बार तो यह भी उसके मन में आया कि यह चिट्ठी वह इन्हीं परमेश्वरी चाचा के सामने फाड़कर फेंक दे और स्पष्ट कह दे कि जिस सरोज को मैंने अपनी आत्मा की निखिल निष्ठा के साथ प्यार किया है, वह अगर मुझसे मिल नहीं सकती, मेरे घर नहीं आ सकती, तो न महेश के साथ मेरा कोई सम्बन्ध रह जाता है,

न तुम्हारे साथ ।"

साग के साथ कढ़ाह में, जैसे आम की छिली हुई फाँकें उबलती रहती हैं, अंतस की ज्वाला में उसकी सारी देह वैसी ही उबल उठी।

इतने में परमेश्वरीलाल आश्चर्य के साथ बोले—"अरे, तुम तो चल दिये ! अपने मित्र की नौकरी ठीक होने की खुशी में मिठाई तो खाते जाओ।"

हेम सोच रहा था—"मेरा कोई नहीं है, मैं कुछ नहीं हूँ। संसार के लिये मैं व्यर्थ हूँ। मैं यहाँ आया ही क्यों ?"

पास खड़ा हुआ कुत्ता कान फटफटा रहा था। उसकी ओर देखकर वह भीतर-ही-भीतर फिर दहकने लगा—'क्या मेरी स्थिति इस कुत्ते की-सी नहीं ?'

इन्हीं भावनाओं के साथ वह यह कहने ही जा रहा था कि मिठाई फिर मिल जायगी, ऐसी जल्दी क्या है ?

इतने में शरमाती-शरमाती सरोज पुनः आकर बोली—"दद्दा, आपको अम्मा बुला रही हैं।"

अभी क्षण भर पहले जो हेम अग्निकुण्ड में पड़ा जला जा रहा था, वही अब जैसे रत्नाकर की लहरों की कल्लोल राशि में जा पहुँचा।

देहरी के भीतर नतशिर खड़ी हुई सरोज हेम को आता देखकर एक पग पीछे हट गई। तब आगे-आगे अन्तःपुर को चला हेम, पीछे-पीछे और फिर बराबर साथ होती हुई तरंगित सरोज। एक क्षण दोनों मौन रहे, फिर सरोज का धैर्य टूट गया। बोली—"इतनी देर से दरवाज़े पर बैठे हो। घड़घड़ाते

हुए अन्दर नहीं आ सकते थे ? आँगन में जा पहुँचने पर अगर मैं देख न पड़ती, तो क्या मुँह खोलकर अम्मा से इतना भी नहीं कह सकते थे कि कहाँ है सरोज ? मैं उसे देखने आया हूँ।"

बात बहुत मन्द स्वर में उठी थी, किन्तु भावना में डूब जाने के कारण कुछ गम्भीर हो गयी।

हेम का सारा रोष मिट गया। उसका लोक-परलोक मिलकर जैसे एकाकार हो उठा हो। एकाएक एक विचार-किरण उसके समक्ष आ गई। एक प्रश्न मन की धरती पर अंकुर की भाँति फूट निकला—'तो क्या अब भी सरोज मेरी बनी हुई है ?'

थोड़ी-सी भी सफलता आशा के उद्यान में कल्पना के दीपोत्सव मनाने लगती है। क्षोभ का ज्वार शान्त हो जाता है और भावना की तरंगें आप-से-आप उदार हो उठती हैं।

मन का उद्वेलन छिपाकर गम्भीरता के साथ हेम ने कह दिया—"तुमको अब ऐसा कुछ सोचना नहीं चाहिये सरोज। यथार्थ के मोड़ पर आकर हमारे जीवन-मार्ग अलग-अलग हो गये हैं।"

सरोज सहसा खड़ी हो गई, हेम भी ठिठुक गया।

बरोठे में दिन-दोपहर में भी थोड़ा अँधेरा बना रहता था। उसी अँधेरे में सरोज ने हेम की आँखों में आँखें डालते हुए सम्यक् आश्चर्य से कह दिया—"हमारे जीवन-मार्ग अलग-अलग हो गये हैं, यह तुम कह रहे हो !"

हेम ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"हाँ सरोज, बात कुछ

ऐसी ही है।"

द्वार सामने आँगन की ओर खुलता था। उसमें अब धूप आने लगी थी।

सरोज ने—जैसे कोई नयी बात हो,—तत्काल आगे बढ़ते हुए कह दिया—"अम्मा, ये हेम दद्दा दरवाज़े से ही लौटे जा रहे थे।" फिर वह हेम की ओर देखने लगी।

कमलेश्वरी रसोई के गवाक्ष से झाँकती हुई बोली—"बैठो-बैठो बेटा, मैं अभी आई।"

सरोज के रंग-ढंग से हेम ने अनुभव किया—"उसमें कहीं कुछ नहीं बदला है। मेरे लिये जो स्थान उसके मन में बना हुआ था, जान पड़ता है वह ज्यों का त्यों सुरक्षित है।"

आँगन के उस पार बरामदे में एक चारपाई खड़ी थी। बिस्तर उसके ऊपर रक्खा हुआ था। सरोज ने उसे बिछाकर बिस्तर उसके सिरहाने रख दिया। फिर स्वयं एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठती हुई बोली—"बैठो न, खड़े क्यों हो?"

हेमचन्द्र चारपाई पर बैठ तो गया, पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह सरोज से बात करे तो क्या करे? उससे कुछ पूछे भी तो क्या?

तब उसके मन में आया—'हो सकता है, सरोज अपने आप में न बदली हो। पर ऐसा भी तो हो सकता है कि उसको इस दशा में देखकर मुझी में परिवर्तन होना शुरू हो गया हो।'

देखते-देखते एकाएक धूप चली गई और कुछ बदली-सी जान पड़ने लगी। धीरे-धीरे वायु में वेग आने लगा और धूल

के साथ तिनके और पत्ते उड़ने लगे।

"पानी बरस जाय तो शान्ति मिले" सरोज बोली—"बड़ी ऊमस थी।" कथन के बाद फिर वह कमरे के अन्दर से एक पुस्तक उठा लाई और उसे लौटाती हुई कहने लगी—"इसे वापस करना मैं भूल ही गई थी।"

हेमचन्द्र ने एक निःश्वास लेते-लेते मन्द स्वर में कह दिया—"सब कुछ वापस थोड़े ही हो जाता है सरोज।"

हेम की बात के समाप्त होते ही कमलेश्वरी कोठरी से एक बोरा उठाकर उसी कमरे के फ़र्श पर डालती हुई हेमचन्द्र के पास आ बैठी।

हेम ने सरोज की माँ के चरणों की रज मस्तक से लगा ली, फिर स्थिर चित्त से कहा—"कहो चाची, प्रसन्न तो हो? सरोज ससुराल से लौट आई। उसको वहाँ कोई शिकायत तो नहीं?"

बात समाप्त भी होने आई, फिर भी जैसे उसे संतोष न हुआ। अतः उसने इतना और कह दिया—"मुझे तो ये बातें सरोज बतलाने से रही, इसीलिये तुमसे पूछ रहा हूँ।"

"सुखी रहो बेटा", आशीर्वाद के स्वर में कमलेश्वरी ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया—"सब ठीक ही है बेटा। समधी के यहाँ किसी बात की कमी तो है नहीं।"

वह जानती थी कि हेम इस विवाह से दुखी अवश्य होगा। पर विधि के विधान पर उसका कोई वश न था। अतः उसने साधारण रूप से यही उत्तर दे दिया।

कमलेश्वरी के इस कथन के पूर्व ही सरोज कमरे के अंदर

चली गई थी।

हेम अपने से पूछ रहा था—'अब मुझे क्या पूछना चाहिये ?' फिर वह तुरन्त यह भी सोचने लगा कि चाची ने यह जान-बूझकर कहा है—'समधी के यहाँ किसी बात की कमी तो है नहीं।' उनके इस कथन में यह बात छिपी हुई है कि तुम्हारे घर में रक्खा ही क्या है ?

इतने में बादल कुछ और अधिक घिर आये। कमलेश्वरी बोली—"जान पड़ता है, पानी बरसेगा।"

हेम अपनी स्थिति सम्हालते हुए बोला—"जब बहुत अधिक गर्मी पड़ती है, तब वर्षा कितनी प्यारी लगती है ! इसी भांति, जब लड़की सयानी हो जाती है, तब उसका विवाह हो जाने से सबको बड़ी शान्ति मिलती है। सचमुच आज मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है चाची। सरोज ससुराल में पूर्ण सुखी और संतुष्ट रहे, भगवान से यही मेरी प्रार्थना है।"

कमलेश्वरी बोली—"बस बेटा, इससे बढ़कर सुख हमारे लिये और क्या हो सकता है !"

हेम भावुकता में आकर जो कुछ कह गया, उससे वह अपने आप में एक गौरव का अनुभव करने लगा। किन्तु सरोज सोच रही थी—'यह असत्य है, यह मिथ्या को अनुचित महत्व देना है।'

खिड़की खोलकर सामने गिरती नन्हीं-नन्हीं बूँदों को पार करती हुई वह उस गगन की ओर देख रही थी, जो मूक होते हुए भी उससे कुछ कहता-सा जान पड़ता था।

इतने में सुरेश बाज़ार से मिठाई लेकर आ पहुँचा।

थोड़ी देर में बरामदे में बैठा हेम जब जलपान कर रहा था, तब अन्दर के कमरे में खिड़की के निकट मौन खड़ी सरोज वर्षा की रिमझिम फुहार देख रही थी।

—:०:—

२

इस हेमचन्द्र के साथ परमेश्वरीलाल का एक विचित्र प्रकार का स्नेह-सम्बन्ध था। उसकी कल्पना में एक मनोहर मिठास थी। वह कुछ उस प्रकार का नाता था, जो हो तो नहीं सका था, पर हो सकता था।

संसार में स्नेह, सौख्य और आनन्द की जो भी सत्ता है, उसका सम्बन्ध हमारी उसी स्थिति के साथ होता है जो हमारे वातावरण में सुलभ तथा सर्वथा अनुकूल होती है। पर यह स्नेह-सम्बन्ध केवल उस सम्भावना के साथ था, जो सिद्धि को तो प्राप्त न हो सकी, पर हो सकती थी। जितना कुछ सौख्य उन्हें भगवान से मिला था, उससे उनको कोई असंतोष न था। पर जो मिल सकता था, किन्तु विधि के विधान से मिला नहीं, उसी का एक सुषुप्त मोह बना हुआ था। न तो व्यावहारिक रूप से उसका कोई महत्व था, न चरितार्थ होने की सम्भावना में कहीं कोई प्रगति हो थी। यह एक ऐसा प्रमाद था; जो शान्त होना न जानता था। यद्यपि वे जानते थे कि अब इस स्थिति में सब व्यर्थ है, दुर्लक्ष्य है। फिर भी उसकी स्मृति अन्तश्चेतना से जाती न थी।

सुदूर अतीत की बात है, यौवनागम में जब एक दिन परमेश्वरीलाल के विवाह की चर्चा चली थी, तभी इलाहाबाद के एक बड़े आदमी की लड़की के साथ उनका विवाह होते-होते रुक गया था। पिता कुछ हठी प्रकृति के थे। इसलिए उन्होंने तुरन्त उनका विवाह-सम्बन्ध अन्यत्र तै कर लिया। फलतः उसी मास के भीतर उनका विवाह हो गया। यह विवाह हो अवश्य गया और परमेश्वरीलाल ने उसमें कोई आपत्ति भी नहीं उठाई, पर कई वर्षों तक वे यह बात न भूल सके कि इलाहाबाद के एक वकील साहब की लड़की जाह्नवी के साथ यह सम्बन्ध होता, तो क्या बात थी!

दिन चलते गये और परमेश्वरीलाल का गृहस्थ-जीवन भी आगे बढ़ता गया। फिर यह स्मृति भी धुँधली पड़ती गई। कभी उन्होंने इस बात का पता नहीं लगाया कि जाह्नवी का विवाह कहाँ हुआ है। वे जब कभी अपनी पत्नी कमलेश्वरीदेवी के साथ सभा-समाज अथवा सिनेमा देखने जाते, तब कभी यह बात कल्पना में भी न आती कि जाह्नवी इसी नगर में हो सकती है। यद्यपि जब कभी लौटते समय मूलगंज के चौराहे से लाटूशरोड की ओर घूमने लगते, तब आगेवाले ताँगे पर बैठा हुआ एक दम्पति उन्हें अवश्य आकृष्ट करता; तथापि उसका परिचय प्राप्त करने की उन्होंने कभी चेष्टा नहीं की। उनके अर्न्तमन में यही एक उदासीन भावना सदा बलवती बनी रहती थी कि होंगे कोई, अपने को क्या! संसार में ऐसे दम्पतियों की कमी नहीं। फिर अकारण किसी से परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता ही क्या है!

पर एक दिन की बात है, जब वे इलाहाबाद से कानपुर आ रहे थे, तभी द्वितीय श्रेणी के डब्बे में आते ही, ध्यान से देखे बिना, उन्होंने पहले तो एक तरुणी से कह दिया—"बहिन जी, अगर आप थोड़ा उधर हो जायँ, तो मुझे भी बैठने भर का स्थान मिल जाय।" पर उसी क्षण उन्हें यह देखकर एक धक्का-सा लग गया कि उसे तो कई वर्षों से वे कानपुर में एक अत्यन्त सौभाग्यवती नारी के रूप में देखते आ रहे थे।

उसकी अवस्था अभी पच्चीस की ही हो पायी होगी। सोने की दो चूड़ियाँ मात्र उसके दायें हाथ में पड़ी हुई थीं। बाँयें हाथ में एक कलाई-घड़ी थी और गले में एक पतली सोने की ज़ंजीर। इसके अतिरिक्त सारी वेष-भूषा दुग्ध-धवल खादी की थी। माँग में न सिन्दूर चर्चित था, न भाल में ही सुहाग-बिन्दी। हाँ, केश-विभाजन की रेखा से इतना अवश्य झलक उठता था कि कंघे का उपयोग ठीक ढंग से किया गया है।

स्थान रिक्त हो जाने पर परमेश्वरीलाल जब उसी बर्थ पर बैठने लगे, तो जाह्नवी ने हेम को अपनी दायीं ओर से बायीं ओर कर लिया और क्षेम को पूर्ववत् पड़ा रहने दिया।

परमेश्वरीलाल ने लक्ष्य किया कि इस नारी ने इस बच्चे को इसीलिये यहाँ लिटा लिया है कि हमारे बीच में कम-से-कम बच्चे का ही व्यवधान पड़ जाय।

अब भी परमेश्वरीलाल को यह पता न था कि यह नारी है कौन? और वह भी उनके नामादि से बिल्कुल परिचित न थी।

जाह्नवी के पिता इलाहाबाद के नामी वकीलों में थे। यहाँ तक कि उनके नाम पर वहाँ एक गली अब तक बनी हुई थी। इसके अतिरिक्त वे नगर-पालिका के भी एक प्रतिष्ठित सदस्य थे।

संयोग की बात, डब्बे में बैठे हुए कुछ वकील उन्हीं के सम्बन्ध में बातें करते हुए कह रहे थे—"इधर दस वर्षों से तो ऐसा कोई प्रभावशाली सदस्य नगरपालिका में था नहीं, जो अपने निर्वाचन-क्षेत्र से इतने बड़े बहुमत के साथ चुना गया हो।"

इतने में कहीं किसी ने कह दिया—"किन्तु कितने दुःख का विषय है कि बेचारे अल्पावस्था में ही न रहे। सुनते हैं दो बच्चे और एक लड़की मात्र वे अपने पीछे छोड़ गये हैं। बच्चे अभी पढ़ रहे हैं। लड़की का विवाह हो गया था; किन्तु दुर्भाग्य से वह भी विधवा हो गई। अभी कल मालूम हुआ कि हाल ही में वह कानपुर के किसी इण्टरकालेज में अध्यापिका हो गयी है।"

अपने ही प्रसंग की इन बातों को सुनकर जाह्नवी की आँखों में आँसू भर आये।

इतने में एक व्यक्ति ने, उसकी डबडबाई हुई आँखों पर दृष्टि डाल, कुछ सन्देह के साथ कह दिया—"बहिनजी, आप को हम लोगों की इन बातों से तो कोई दुःख नहीं पहुँचा?"

जाह्नवी ने आँसू पोंछते हुए उत्तर दिया—"जिनकी आप लोग बात कर रहे हैं, वह मेरे पूज्य पिता थे।"

जाह्नवी की इस बात को सुनकर सब लोग एक दम से

अवाक् रह गये। फिर जो व्यक्ति बोल रहा था, वही पुनः बोल उठा—"हम लोगों को अब तक यह बात मालूम न थी कि आप उन्हीं वकील साहब की पुत्री हैं। मुझे बड़ा खेद हो रहा है कि मेरे कारण, अकारण आपको कष्ट हुआ।"

इसी समय वह व्यक्ति पुनः बोल उठा—"आपने भी स्वामी के स्वर्गवास के पश्चात् स्वावलम्बन का मार्ग ग्रहण कर बड़े साहस का परिचय दिया है। आपने इस प्रयत्न से अपने ही नहीं, अपने पूज्य पिता के गौरव की भी भली भाँति रक्षा की है।"

रश्मि-ज्योतित ऊर्मि-सी जाह्नवी ने उत्तर दिया—"मैंने कुछ नहीं किया। मैं अकेले कर ही क्या सकती थी! भगवान की इच्छा के बिना पत्ता तक तो हिल नहीं सकता। अकस्मात् जब मेरे ऊपर यह बज्रपात हो गया, तब उसी वर्ष मैं ट्रेनिंग कालेज के चुनाव में आ गई। उसके बाद एल० टी० कर लेने पर भगवान की कुछ ऐसी कृपा हुई कि तुरन्त मुझे एक उच्चतर माध्यमिक कन्या-विद्यालय में प्रशिक्षण-कार्य मिल गया।"

तभी वे साहब बोले—"सुनते हैं, आप के पति नंदनंदन बाबू भी नगर के श्रेष्ठ वकीलों में से थे।"

और दूसरे साहब ने कहा—"वे इतने स्वरूपवान थे कि चित्र-पट उद्योग के एक निर्देशक ने उनको अपनी एक चित्र-कथा में प्रमुख भूमिका देने की इच्छा प्रकट की थी।"

अब परमेश्वरी बाबू को स्मरण हो आया कि इस सद्यः विधवा नारी के पति कौन थे। उनकी इस प्रशस्ति को सुनकर उनको कुछ ईर्ष्या-सी हो उठी। एक बार तो वे यह भी सोचने

लगे—'वैसे मैं देखने में क्या कुछ बुरा लगता हूँ ?'

सामने पड़े हुए दहकते अंगार से बचना सरल है, पर राख में छिपी हुई चिनगारियों से बचना दुष्कर।

गाड़ी चली जा रही थी और अंग्रेज़ी का एक दैनिक-पत्र हाथ में लिये हुए वें सोच रहे थे—'जो भी हो, जाह्नवी के साथ बच्चा की माँ की कोई तुलना नहीं।'

दाँयीं ओर क्षेमचन्द्र लेटा हुआ था। बायीं ओर बैठा हुआ हेमचन्द्र कभी-कभी माँ की ओर लपककर पूछने लगता—"अम्मा, दाली तानपुल तब चउँपेदो ?"

जाह्नवी ने उसकी तोतली बात सुनकर उत्तर में कह दिया—"गाड़ी को कानपुर पहुँचनें में देर लगेगी हेम। अब तुम सो जाओ।"

आँखें मींचते हुए हेम ने परमेश्वरीलाल की ओर पैर फैला दिये। फिर पलक उठाकर धीरे से वह बोला—"अब अम छोयेंदें।"

हेमचन्द्र के पैर का लाल जूता परमेश्वरीलाल के वस्त्रों को थोड़ा छूने लगा, तो जाह्नवी ने उसका पैर समेटने का प्रयत्न करते हुए कह दिया—"दूसरों के शरीर से अपना कोई अंग छूने नहीं देना चाहिये हेम। और तुम्हारा पैर अभी इन बाबू साहब के कपड़ों से छुआ जा रहा था।"

एक साधु की भाँति परमेश्वरीलाल ने जाह्नवी की ओर उन्मुख होकर कह दिया—"कोई हर्ज नहीं, बच्चा है।" फिर हेम की ओर देख सीधे उसी से बोल उठे—"अच्छी तरह से पैर पसार लो।"

कथन के साथ वे सोचने लगे—'हमारे मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह रूढ़िवादी समाज है। नहीं तो जाह्नवी के साथ क्या अब भी मेरी आत्मीयता हो नहीं सकती, कि निभ नहीं सकती ?'

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"ठीक है, ठीक है। इतनी ही जगह में सो जायेगा।" और कथन के साथ उसने हेम को अपनी ओर खींच लिया।

इलाहाबाद से गाड़ी प्रातःकाल साढ़े आठ बजे के लगभग चलती थी। सर्दी के दिन थे। ग्यारह बजे के लगभग ट्रेन जब फतेहपुर में रुकी, तो जलपान-कक्ष के छोकरे को सामने देख परमेश्वरीलाल ने चाय, टोस्ट और बिस्किट लाने का आदेश कर दिया।

जाह्नवी बच्चों के लिए अपने साथ खाना ले आयी थी। खाद्यसामग्री के कटोरों को खोलकर वह एक तौलिया पर दोनों बच्चों को खाना रखने लगी।

परमेश्वरीलाल टोस्ट के टुकड़ों में मक्खन लगा रहे थे। क्षेमचन्द्र कभी सीट पर बैठता और कभी नीचे उतर जाता। एक बार मठरी खाता-खाता, जब वह परमेश्वरी बाबू के सामने आ पहुँचा, तो उन्होंने मक्खन लगे हुए टोस्ट का वही टुकड़ा उसके आगे बढ़ा दिया।

क्षेम ने उसकी ओर हाथ बढ़ाये बिना तुरन्त घूमकर माँ की ओर कुछ ऐसी दृष्टि से देखा, मानो उसकी स्वीकृति के बिना किसी तरह वह टोस्ट ले न सकेगा।

इतने में कहीं हेम के मुँह से निकल गया—"तोछत थाना

वो नहीं दानता। बिछकित दे दो, तो ले लेदा।"

परमेश्वरीलाल ने टोस्ट का टुकड़ा अपने प्लेट में रख लिया और बिस्कुट उसकी ओर बढ़ा दिया।

उस समय क्षेम चुपचाप खड़ा था। उसके गोल-मटोल मुख की नन्हीं दँतुलियाँ खुली हुई थीं। बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों से वह माँ की ओर इकटक देख रहा था। प्लेटफार्म पर गरम दूध और 'चाय गरयम्' की पुकार सुनाई पड़ रही थी। यात्री इधर-उधर आ-जा रहे थे। एक पंजाबी दम्पति उस डब्बे में भी आ पहुँचा। तभी अपना स्थान सुरक्षित रखने और क्षेम को अपने पास बुला लेने के अभिप्राय से जाह्नवी ने कह दिया—"ले लो।"

अब क्षेम के एक हाथ में मठरी का टुकड़ा था, दूसरे में एक बिस्किट। वह ज्यों ही जाह्नवी के निकट पहुँचा, त्यों ही उसने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर उसे ऊपर बैठा लिया। फिर उसे प्यार से दुलराती-खिलाती हुई वह स्वयं भी खाने में लग गई।

परमेश्वरीलाल सोच रहे थे—'कानपुर में इसका कोई किराये का ही मकान होगा। और मेरे मकान में दो कमरे खाली ही तो पड़े रहते हैं। लेकिन कौन विश्वास करेगा कि विशुद्ध सहानुभूति के सिवा मेरा और कोई स्वार्थ नहीं?"

और जाह्नवी सोच रही थी—'चाहे जितना बचकर चलो, मगर इन बच्चों के कारण कभी-न-कभी, परिचित-अपरिचित लोगों का कोई-न-कोई अहसान अवांछित रूप से स्वीकार करना ही पड़ता है। अगर मैं क्षेम को बिस्किट लेने से मना कर देती, तो एक तो क्षेम का मन गिर जाता, दूसरे ये

महाशय भी मुझे असभ्य समझ लेते !'

थोड़ी देर में कानपुर आ गया। यात्री लोग डब्बों से उतर-उतरकर अपने-अपने स्थान को जाने का उपक्रम करने लगे। दो मिनट बाद जब जाह्नवी अपना बेडिंग एक भारी ट्रंक, सूटकेस, बर्तनों से भरा बोरा, टिफ़िन-कैरियर आदि सामान दो कुलियों के ऊपर लदवाकर दोनों बच्चों की अँगुलियाँ पकड़े हुए चल दी, तब परमेश्वरीलाल का कुली भी उनका सामान लादे हुए जाह्नवी के पीछे हो गया।

क्षेम अब जाह्नवी की गोद में था। उसका मुख सीढ़ियों के उतार की ओर था। परमेश्वरीलाल नीचे की सीढ़ी पर हैट लगाये हुए चढ़ रहे थे। क्षेम ने इस अवसर से लाभ उठाया। हाथ बढ़ा कर उनका हैट पकड़ लिया। जाह्नवी ने झट उसका हाथ हटाते हुए कह दिया—"किसी की चीज़ इस तरह छुआ नहीं करते।"

तब तक परमेश्वरी बाबू ने जो घूमकर देखा, तो क्षेम को मुसकराता हुआ देखकर वे बोले—"कोई बात नहीं। बच्चों को सब अधिकार है।"

मुसकराती हुई जाह्नवी बोली—"धन्यवाद।"

फाटक पर जो युवक टिकिट ले रहा था, उसकी नियुक्ति हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे। कर्तव्य के निर्वाह में कठोरता का स्तर कहीं से भी विनत न हो पाया था। एकाएक उसने देखा, जिस महिला के पास केवल डेढ़ टिकिट है, उसका सामान पूरी गृहस्थी का है। अतः उसने कुली को रोकते हुए पूछा—"किसका सामान है ?"

जाह्नवी ने फाटक के बाहर से घूमते हुए उत्तर दिया—"मेरा।"

टिकिट-बाबू ने पूछा—"इसे बुक नहीं करवाया ?"

तब तक परमेश्वरी बाबू वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने आगे बढ़कर कह दिया—"बुक करवाने की आवश्यकता नहीं समझी गई; क्योंकि इनके डब्बे में आ जाने के बाद संयोग से मैं आ गया। और मेरे साथ जितना सामान हो सकता था, उसकी अपेक्षा—आप देख ही रहे हैं—बहुत कम है।"

तत्काल प्रश्न हो उठा—"आप का टिकिट ?"

परमेश्वरी-बाबू ने टिकिट आगे बढ़ाते हुए कह दिया—"बड़े खेद की बात है कि आप एक सभ्रान्त महिला को जान-बूझकर अपमानित करते हुए ज़रा भी नहीं हिचकते !"

"इसमें अपमान की क्या बात है ? सामान अधिक होने पर उसका किराया वसूल करने के लिए यात्री को रोक लेना मेरा कर्तव्य है। और जब आपने बाद में टिकिट लिया है, तब आप इनके साथ होने का दावा कैसे कर सकते हैं ?"

"साथ होना एक साथ टिकिट लेने पर निर्भर नहीं है जनाब। दो घरों से अलग-अलग चलने पर भी रास्ते में हम एक साथ हो सकते हैं और एक ही घर से, एक साथ चलने पर भी, रास्ते में अलग हो जा सकते हैं।"

यह उत्तर ऐसा सटीक था, जिसने एक ओर टिकिट-बाबू को प्रभावित कर दिया, दूसरी ओर जाह्नवी को। तब तक उधर यात्री-वृन्द अत्यधिक बढ़ गया था।

इतने में संयोग से एक साहब ने कह दिया—"जाने

दीजिये साहब । मामले में कुछ भी दम नहीं है ।"

टिकिट बाबू ने एक बार उनकी ओर दृष्टि डालकर किंचित मुसकराते हुए कह दिया—"जाइये ।"

कुली आगे बढ़ गया और परमेश्वरीलाल उसके साथ होते-होते जाह्नवी के बराबर चलने लगे ।

पहले तो जाह्नवी क्षण भर मौन रही । फिर उसे कहना पड़ा—"आप ने तर्क अच्छा पेश किया । इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद ।"

"हूँ-हूँ । धन्यवाद देने की इसमें क्या आवश्यकता है ? एक सहयात्री होने के नाते मुझे ऐसा कहना ही चाहिये था ।"

"फिर भी मैं इसे आप की कृपा ही समझूंगी ।" उत्तर के साथ वह सोच रही थी—'एक सहयात्री ? अब इस जीवन में मैं सहयात्री बनाऊंगी !'

परमेश्वरी बाबू बोले—"यह आपकी शालीनता है ।"

फिर एक मौन । मौन ऐसा, जो अपनी ओर खींचता है । इससे विदित होता है कि वार्ता अपना प्रभाव डाल रही है । अन्तर्वाणी से कुछ स्वर फूट पड़े हैं ।

संकुचित जाह्नवी आगे बढ़ गई थी । पुल की सीढ़ियों से ही रिक्शेवाले पूछने लगे—"माताजी, रिक्शा चाहिये ?"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"नहीं ।" फिर वह नीचे आ गई ।

उसी रिक़शावाले ने परमेश्वरीलाल से पूछा—"बाबू जी रिक्शा चाहिये ?"

उन्होंने भी उत्तर दिया—"नहीं ।"

जाह्नवी आगे बढ़कर ताँगा तै करने लगी, तो परमेश्वरी बाबू पास आकर बोले—"मुझे अब आज्ञा दीजिये" और साथ ही क्षेम के बायें कपोल को अपनी तर्जनी के मर्मस्पर्श से चुमकारकर कहने लगे—"बिस्किट खाने को मेरे घर नहीं चलोगे ?"

जाह्नवी ने क्षेम के हाथ जोड़कर कह दिया—"मामाजी को नमस्ते करो।"

क्षेम ने हाथ जोड़कर मस्तक से लगा लिये और हेम अपने आप बोल उठा—"ममस्ते मामादी।"

परमेश्वरीलाल कुछ गम्भीर हो उठे; फिर भी बोले—"जियो-जियो, हज़ार वर्ष।"

तभी जाह्नवी ने कह दिया—"मैं पुनः आपको धन्यवाद देती हूँ।"

परमेश्वरीलाल ने इस बार धन्यवाद पर ध्यान न देकर पूछा—

"आप तो शायद हमारे मुहल्ले के पास ही कहीं रहती हैं।"

"जी, देवनगर में।"

"मुझे मालूम था। अच्छा इस समय तो हम विदा होते हैं। आशा है, फिर भेंट होगी।"

जाह्नवी ने उसकी इस बात पर ध्यान न देकर ताँगे की ओर देखा। सामान उस पर लद चुका था। फिर अपने साथ उसने बच्चों को भी उस पर बैठा लिया।

अब आगे-आगे चला परमेश्वरी लाल का रिक्शा, उसके

पीछे जाह्नवी का।

पथ एक था, पथिक दो। जाह्नवी सोच रही थी—'स्वच्छ अन्तःकरण उस चिकने घड़े के समान होना चाहिये, जिसमें एक भी जल-बिन्दु ठहर न पाये।'

और परमेश्वरीलाल के मन में आ रहा था—गीता में भगवान कहते हैं—'योग का अर्थ है कर्म करने का कौशल।'

—:०:—

३

भवानीदत्त की अवस्था अब सत्तर वर्ष की हो चुकी थी। शरीर सूख गया था और चलने-फिरने का बल भी अब बहुत क्षीण पड़ गया था। लकवा मार जाने के कारण बायाँ अंग रक्त-मांस रहने पर भी निर्जीव हो गया था। सहारा पाये बिना चल-फिर न सकते थे। आँखों की ज्योति कुछ कम अवश्य हो गई थी; किन्तु निकट आये हुए व्यक्ति की रूप-रेखा देखकर उसे पहचान लेते थे। कहीं हस्ताक्षर करना होता, तो छपे हुए काग़ज को सामने रख देने पर चश्मे की सहायता से इतना जान लेते थे कि इसमें किस स्थान पर मुझे हस्ताक्षर करने हैं। अधिक ज़ोर से तो न बोल पाते थे, किन्तु चारपाई पर पड़े-पड़े दस-बीस मिनट लगातार बोल सकते थे। भोजन अब एक ही समय करते थे। सो भी गेहूँ का दलिया, मूँग की दाल, तरोई या पालक का साग। घी केवल दाल या साग में लेते, केवल बघार में, ऊपर से नहीं। रात में केवल पाव भर दूध लेते। बचपन में सबेरे कभी उठ न पाते थे। पर अब पाँच बजते ही बड़बड़ाने लगते—"जो आदमी सूर्योदय से पहले नहीं उठ सकता, वह सदा दरिद्र रहता है। बाप-दादे की कमाई अगर पास-पल्ले रहती भी है, तो उसे नष्ट होते

देर नहीं लगती। अरे बिस्सू की मां, प्रेम उठा कि नहीं ?"

उत्तर मिलता—"बारह बजे तो वह घर आया है। भला इस समय कैसे उठेगा ?

"हाँ, तब तो·····।"

बात बीच में ही अधूरी छूट जाती। तब बिना बोले मन-ही-मन अपने आप सोचते रहते—'यही एक लड़का मैंने पैदा किया है। बाक़ी तो सब सुअर हैं। यों ग़लतियाँ मैंने भी बहुत की हैं।'

झुर्रियों भरे मुख पर मुसकान झलकने लगती है।—चार विवाह कर डाले और चौदह बच्चे पैदा किये। भगवान की लीला—स्त्रियाँ मरती गईं। न विवाह होते देर लगी और न उनसे बच्चे पैदा होने में। लोग आश्चर्य करते हैं—और बात भी है आश्चर्य करने की। जिनकी गोद में एक भी लाल नहीं है, उनके दृष्टिकोण से मुझसे अधिक सुखी दूसरा कोई व्यक्ति इस संसार में नहीं। क्योंकि मेरे चौदह-के-चौदहों बच्चे जीवित ही नहीं, स्वस्थ भी हैं।

पहली स्त्री का नाम था एकादशी। उससे दो बच्चे पैदा हुए, राधेगोविन्द और सत्यवती। एकादशी से माँ की पटती न थी। अमीर घर की लड़की थी, परिश्रम का काम उससे होता न था। फिर भी किसी तरह करती थी। मन से न होता, तो बेमन से करती। किये बिना चारा न था। भवानी बाबू को कभी उलहना देती, तो वे स्पष्ट कह देते—'जितना किये हो सके, उतना करती जाओ। शिकायत कभी मुझ से मत करो माँ की।'

आँखों में आँसू भर आते हैं; पर कण्ठ खोलना नहीं

जानते।—'रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।' चारपाई पर लेटे-लेटे बिच्छू काटने का-सा दर्द बदन में होता रहता है। वे बातें बीत गई हैं, वह जीवन बीत गया है, वे प्राणी नहीं रहे, वे दिन चले गये।—एकादशी उस दिन फूट-फूटकर रोई थी। क्योंकि एक पुरानी पतीली मलते-मलते उसकी पैनी कोर से हथेली चिर गई थी और दस-बारह बूँद रक्त भी गिरा था! स्मृति-कल्पना के धुँधले पट पर हाथ में बँधी हुई कपड़े की वह सफ़ेद पट्टी अब तक याद आ रही है। एक सप्ताह भी न होने पाया था कि उसका भाई गोकुलचन्द्र उसे लेने आ पहुँचा। एकादशी उसके साथ चली गई थी। वहीं राधेगोविन्द पैदा हुआ था। जब वह साल भर का हो गया, तब भवानीबाबू उसको किसी तरह समझा-बुझाकर घर ले आये। इस बार उन्होंने एक नौकरानी रख ली। लेकिन फिर माँ ने शिकायत की—'यह नौकरानी तो काम-चोर है। बर्तनों में जूठन छोड़ जाती है। और चमक तो कभी उन पर आती ही नहीं!'—माँ ने शिकायत की, तो उसने जवाब दिया—'एक आपका घर थोड़े ही है, जो बर्तन मलने में सारा दिन यहीं लगा दूँ। पाँच घर की सेवा-टहल करती हूँ, तब कहीं निर्वाह होता है। तीन रुपये में और कितना काम लेना चाहते हैं! एक घंटे से ज़्यादा समय मैं नहीं दे सकती।'

उसका इतना कहना था कि भवानी की माँ ने क्रोध में आकर कह दिया—"चल-चल, हरामज़ादी कहीं की! अपना हिसाब ले जा। मैं ऐसी मुँहजोर नौकरानी की शकल नहीं देखना चाहती!"

हिन्दुस्तानी एकेडमी
(५६५)
(पुस्तकालय)

परिणाम यह हुआ कि एकादशी पर फिर दासी-कर्म का भार आ पड़ा। राधागोविन्द गोद में था और सत्यवती गर्भ में आ चुकी थी। इतने में गोकलचन्द्र बाबू फिर आ पहुँचे और एकादशी पुनः चली गई। यद्यपि इससे पूर्व भी वह असंतुष्ट होकर गई थी; लेकिन जाने के बाद पत्रों का उत्तर वह देती रहती थी। पर इसबार उसने ऐसा नहीं किया। जब दो महीने हो गये और उसका कोई उत्तर नहीं आया, तो भवानीबाबू ने समझ लिया कि वह रूठ गई है। परिणाम यह हुआ कि उसे मनाने के लिए उन्हें ससुराल जाना ही पड़ा।

भवानी बाबू ने अनुभव किया कि एकादशी के साथ अन्याय हो रहा है, यद्यपि वे स्वयं यह अन्याय नहीं कर रहे हैं। कौन कर रहा है, यह स्पष्ट था। लेकिन भवानी बाबू जानते थे कि क्रोध की मात्रा माँ में कितनी प्रबल है। उनके पिता जीवित न थे, वे भी यदि उनका पक्ष न लेते तो माँ के स्वाभिमान की रक्षा कौन करता ? वे चाहते तो संकोच त्याग कर उनसे कह सकते थे—'बड़े घर की बेटी है; इसलिये दासी-कर्म उससे हो नहीं सकता। नौकरानी रखनी ही पड़ेगी। तुम घर के अन्दर बन्द रहती हो। बाहरी दुनियाँ की हवा का मोड़ तुम्हें छू नहीं पाता। तुम्हें मालूम नहीं कि दुनियाँ कैसी बदल रही है। नौकरों को तुम जवाब दे सकती हो। लेकिन उन्हें गाली देकर अपमानित करने का अधिकार तुम्हें नहीं। उस जीभ को कटकर गिर जाना चाहिये, जो किसी को इस कारण हरामजादी कहती है कि वह उसकी नौकरी करती है।

सोचते हुए आँसू रुक नहीं पाते। इस व्यथा को कौन

समझेगा ! मेरा मन होता था कि माँ से मैं स्पष्ट कह दूँ; पर बात मुँह तक आते-आते अटक जाती थी । होंठ खुलते-खुलते तदवत् स्थिर रह जाते थे । ऐसी बात भला माँ को सहन हो सकती थी !

करवट बदल लेते हैं ।—'अब इन सब बातों को सोचने से कोई लाभ नहीं ।'—अरे बिस्सू की मां ? नहीं सुना जान पड़ता है ।'—और ज़ोर से बोल उठते हैं ।—"अरे मैं कहता हूँ, कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है ?"

बिस्सू की मां निकट आ गई ।

अवस्था यही कोई चालीस-बयालीस, गौर वर्ण, शरीर से तन्वंगी । आँखों पर चश्मा सुनहरे फ्रेम का है । बच्चों में विश्वनाथ सब से छोटा है, फिर भी सोलह का तो होगा ही । पत्थर पर एड़ियाँ रगड़-रगड़कर उन्हें शुभ्र अरुण रखने का उत्साह ज्यों-का-त्यों बना है । पान खाने की आदत अब तक नहीं गई । आधे भाल तक अवगुण्ठन खिसकाकर छालिया मुँह में डाले चारपाई के पास खड़ी हो गईं । बोलीं—"क्या कह रहे थे ?"

भवानी बाबू ने संकेत से कह दिया—"बैठो न एक-आध मिनट को ।"

चटाई फ़र्श पर पड़ी थी । उसी पर बैठती हुई वे बोलीं—"बैठकर क्या करूँ, बोलो ?"

एक निःश्वास लेकर भवानी बाबू बोले—"अम्मा को मरे हुए कितने दिन हुए होंगे भला ?"

"यही कोई बीस वर्ष । मेरा गौना होकर ही आया था ।"

बिस्सू की माँ ने उत्तर के साथ प्रश्न कर दिया—"मगर आज तुम्हें अम्मा का स्मरण कैसे हो आया ?"

आँखों में आँसू भर आये। रुँधे हुए गले से बोले—"मन ही तो है बिस्सू की मां ! आजकल नौकरानी आठ रुपये मासिक लेती है। एक समय था, अम्मा ने तीन से सवा तीन देना स्वीकार नहीं किया था। एकादशी का हाथ चिर गया था; क्योंकि पतीली को कोर कुछ पैनी थी !"

"इस तरह सोचोगे, तो तुम्हारी तबियत और खराब हो जायगी।" एकादशी कहती हुई उठ कर चल दी और अतीत काल की स्मृतियाँ फिर एक-एक कर भवानी बाबू के समक्ष आने लगीं।

'—हाँ, तो जब मैंने कहा—"आज मुझे मकनपुर जाना है।"

'माँ उस समय चावल बीन रही थीं, एकाएक बोल उठी थीं—"हाँ, दुलहिन के पैर नहीं पड़ोगे, तो रात में नींद कैसे आयेगी !"

मैंने माँ को इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने सोचा—ऐसे समय बुद्धिमानी इसी बात में है कि मैं मौन रहूँ। कठोर बात का उत्तर उससे भी अधिक कठोर बात कहना नहीं, वह विनत मूक धैर्य है, जो ऐसे प्रहारों की भी उपेक्षा कर कर्तव्य-पथ से विमुख नहीं होने देता।

मैं जब गाड़ी पकड़ने स्टेशन पहुँचा, तो माँ के प्रति मेरे मन में ज़रा भी क्षोभ नहीं था। थी एक दया कि हमारे समाज की देवियां अशिक्षित होने के कारण सभ्यता से कितनी दूर

रहती हैं। अपना राग-द्वेष छिपा तक नहीं सकतीं। माँ की वाणी में इतना भी संयम नहीं कि ऐसी बातें मुझसे तो न करतीं!

'मैं एकादशी से जाकर मिला। मैंने उसे बहुत समझाया कि तुम चलो, मैंने एक दूसरी नौकरानी तै कर ली है। वह बड़ी सहनशील है। माँ उसे गालियाँ देती भी रहेंगी तो भी वह काम नहीं छोड़ेगी।'

'लेकिन एकादशी न मानी। उसका कहना था—'अब मैं माँ के साथ नहीं रह सकती। उनकी बातें मुझे पसंद नहीं आतीं। सहनशीलता तो उनमें है ही नहीं। उन्हें किसी का काम पसन्द ही नहीं आता। उन्हें मेरी बनायी रोटी पसन्द नहीं आती।—'पराँठे तुम कभी मत बनाया करो। तुम से घी बहुत लगता है।—तुम्हें चाय बनाने तक का शऊर नहीं। एक पैकेट दो दिन को होता है। कितनी चाय बर्बाद होती है! मैं एक चम्मच-चाय की पत्ती में-तीन कप चाय बनाती हूँ।—आज दाल में नमक ज्यादा हो गया। आज रोटियाँ इतनी कड़ी बनी हैं कि फेंककर मारूँ तो सर फट जाय—और कपड़ों की धुलाई के सम्बन्ध में तो उनको शिकायत हमेशा बनी रहती, धोबी को कपड़े डालना उनको पसंद नहीं। वह कहा करती हैं—"वह भी कोई घर है, जहां स्त्रियों और बच्चों के कपड़े लाण्ड्री में जाया करते हैं! मैं उनकी ऐसी बातें नहीं सुन सकती। मैं इन बातों को सहन नहीं कर सकती—नहीं कर सकती।"

आह! इसके बाद एकादशी ने कहा था—

'मुझे वह दिन याद आ रहा है। वह कमरा मेरे सामने है। मैं उस तकिये को देख रहा हूँ, जो आँसुओं से तर हो गया है।—'मुझे अपनी माँ के साथ रहने के लिये विवश मत करो। नहीं तो.....।'

'तब अपना-सा मुँह लेकर मैं लौट आया था। मुझे एकादशी से ऐसी आशा न थी। मैंने सदा यही सोचा है कि जिस स्त्री को पति प्यारा होता है, वह उसको, उसके घर को—उसके माँ, बहन, भाई, कुटुम्ब के समस्त प्राणियों को—प्यार करती है। घर की दीवारें, छज्जे, झोंपड़ी, छप्पर, खपरैल—धूल और धुआँ—सब कुछ उसे प्यारा होता है। मुझे कुछ भ्रम भी हो गया कि आख़िर यह ज़िद एकादशी में पैदा कैसे हो गई! बहुत दुःख अपने साथ लेकर मैं लौट आया।

'माँ ने पूछा—"क्यों दुलहिन को ले नहीं आये?"

'मैंने उत्तर दे दिया—"हाँ, नहीं ले आया। सर्दी के दिन हैं। सास ने कहा—राधेगोविन्द के भाई होनेवाला है। अब महीने-डेढ़-महीने के लिये क्या भेजूं!"

'माँ ने उत्तर दिया—"साफ़-साफ़ यह क्यों नहीं कह देते कि मेरे रहते अब दुलहिन यहाँ नहीं आयेगी। तुमको मैं क्या कहूँ, कोई मर्द बच्चा होता, तो अब तक दूसरा विवाह करके दिखला देता।"

'मैंने इस बार भी सदा की भाँति माँ को कोई उत्तर नहीं दिया।

'जैसे सारी घटनावली अभी कल की हो, इस भाँति एक-एक दिन का जीवन मुझे याद है।

'एक दिन माँ को ज्वर आ गया। मैं दवाखाने से लौटकर आया, तो क्या देखता हूँ कि एक लड़की कमरे के दरवाज़े से लगी अंगीठी पर परांठे सेंक रही है। हरी किनारीवाली डोरिये की धोती उसके बदन पर है और हरी रेशमी छींट का ही ब्लाउज़। केश बहुत सावधानी से सँवारे हुए हैं। आम की फाँक से बड़े-बड़े विनत नयन हैं। स्नेह की दीप्ति के साथ नयनों का आयतन जो देखता हूँ, तो मन नियंत्रण से बाहर हो उठता है।

'ज्यों ही मैंने कमरे के अन्दर प्रवेश किया, वह एकदम से चौंक पड़ी। इधर-उधर धोती खींचती हुई उसने अपने आपको कुछ इस तरह समेट लिया जैसे मैं एक ही दृष्टि से उसका सब कुछ छीन लेने को आतुर हूँ।

'मैंने उससे तो कुछ नहीं कहा; लेकिन माँ के मत्थे पर हाथ रखकर देखा, तो मुझे मालूम हुआ, सचमुच ज्वर बड़ा तीव्र है। मैंने कहा—मैं वैद्यजी को लेने जाता हूँ।

'वह बोलीं—"वैद्य की क्या ज़रूरत है? मैं चली जाऊँगी।"

'आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—"कहाँ चली जाओगी?"

'उन्होंने आर्द्र कण्ठ से कहा—"वहीं, जहाँ तुम्हारे बाबू गये हैं।" और इस कथन के साथ वे रो पड़ीं।

'यह उनमें एक आदत सी पड़ गई थी। जब कभी वे बीमार पड़तीं, तो सदा इसी भाँति घबरा उठतीं। यह कहते देर न लगती कि "बस, इस बार नहीं बचूँगी।"

'मुझे जो कुछ करना होता, मैं सदा करता रहता था। —मैं वैद्यजी को लिवा लाया। उन्होंने दवा दी और दो-

चार दिन बाद माँ की तबियत ठीक हो गई।

'तबियत तो ठीक हो गई माँ की। लेकिन मैंने प्रायः देखा कि धोती कहीं फट गई है, तो उसे सीने के लिये वही लड़की माँ के पास उपस्थित है। बुनाई का काम करना है तो ऊन के लच्छों और सलाइयों के साथ माँ के पास बैठी वही लड़की डोरे डाल रही है। एकआध बार मैंने देखा, कोई समाचार-पत्र या मासिकपत्रिका उसके हाथ में है। पिछवाड़े की खिड़की खुली हुई है। वहीं एक कुर्सी पड़ी है। माँ पलँग पर लिहाफ़ ओढ़े लेटी हुई हैं और वह लड़की बड़े मनोयोग से कुछ सुना रही है।

'किन्तु सदा यही होता कि ज्यों ही मैं बाहर से भीतर जाता, त्यों ही वह लड़की झट कह उठती—"अब मैं जाऊँगी बुआ।"

'माँ से कभी मैंने पूछा नहीं कि यह लड़की कौन है? लेकिन उसका एकाएक आतंकिता-हरिणी-सा चौंकना, सिकुड़ना, सिमटना और भागते हुए चौकड़ी भरना, कनखियों से देखना, फिर झट तुरन्त सावधान हो जाना, देह यष्टि के लोम-लोम को चारों ओर से छिपाना और मन के वातायनों, गवाक्षों, खिड़कियों और द्वारों के सीखचों—तथा साँस-साँस और रन्ध्र-रन्ध्र तक को क्षण-क्षण पर बन्द करते रहना, पवन झकोरों को मूकता से मन्द करते रहना, कुछ ऐसा मनोहर लगता, कि लगता, मैं एक स्वप्न देख रहा हूँ।

इसी समय गोकुलचन्द्र भाई की चिट्ठी आ गई, जिससे विदित हुआ कि राधेगोविन्द के बहन हुई है।

'मां ने सुना, तो मुँह बनाती हुई बोली—"चलो, एक डिगरी तो तैयार हो गई।"

'उस दिन जब मैं खाना खाने बैठा, तो माँ उबल पड़ीं। बोलीं—"अब एक नौकरानी चाहिए बर्तन मलने को और एक खाना पकाने को। मैं किसी की लौंड़ी-बाँदी तो हूँ नहीं। मैंने बहुत किया, अब मुझ से नहीं होता।"

'मेरे मुँह से निकल गया—"आख़िर तुम्हारा मतलब क्या है, अम्मा ?"

'माँ ने उत्तर दिया—"मतलब ? मुझसे मतलब पूछते हो ! मुन्नी की माँ कहती थीं—"मेरी लड़की अब तुम्हारे घर नहीं जायेगी।"

'साधारणतया मेरे मन में आया, मैंने तो कभी उसे निमंत्रण तो दिया नहीं। पर मैंने ऐसा कुछ कहा नहीं। पूछा—"क्यों ?"

'माँ ने उत्तर दिया—"उसे बड़ी शर्म लगती है। पड़ोसी लोग कहते हैं—आख़िर कुछ तो बात है ही। इधर कुछ लोगों का यह भी कहना है कि मेरे ही कारण दुलहिन यहाँ नहीं आती। पर यह कोई नहीं जानता कि तुम्हारे मन में क्या है !"

'मैं आश्चर्य से चकित हो उठा। एकाएक मुँह से निकल गया—"यह तुम क्या कह रही हो, अम्मा !"

माँ ने तुरन्त उत्तर दिया—"दाई से पेट नहीं छिपता बेटा। मुझे मालूम हो गया। मुझे सब कुछ मालूम हो गया। और सच्ची बात यह है कि मैं इसमें कोई बुराई भी नहीं देखती। जब दुलहिन यहाँ आने को तैयार नहीं, तो इस लड़की को बहू बना लेने में क्या बुराई है ? मुन्नी की माँ दो हज़ार

तो अपने मुँह से कह ही रही थीं। दादा के सामने बात होगी, तो हज़ार नहीं तो पाँच सौ और बढ़वा लूंगी।"

'मेरे मन में आया कि ऐसा सोचना एकादशी के साथ अन्याय करना है। किन्तु अब देर हो चुकी थी। दस-दस पाँच-पाँच दिन के अन्तर से मैं उस लड़की के हाथ से चाय पी चुका था। उसके हाथ का बनाया हुआ खाना खा चुका था। और उन दिनों जिस तकिये के गिलाफ को मैं सिरहाने रखकर सोता था, उसकी कढ़ाई के डोरों में उस लड़की के शब्द बोल रहे थे—"मधुर स्वप्नः सुखी जीवन।"

परिणाम यह हुआ कि जब मुझे स्पष्ट कह देना चाहिये था कि "ऐसा नहीं होगा। यह बात सही नहीं है कि एकादशी के साथ मेरी कोई अनबन है। तुम्हारे साथ भले ही हो।" तब भी मैंने अपनी स्थिति का ऐसा कोई स्पष्टीकरण माँ के आगे नहीं किया।

'एक ओर यह नहीं किया और दूसरी ओर यह भी नहीं किया कि इस विवाह से इनकार कर देता। मैंने सत्य-कृष्ण कुछ नहीं कहा।

'काँटे चाहे रास्ते के हों, चाहे मानवी दुर्बलता के, चुभना उनका गुण है।

'एक दिन दस रुपये का नोट कहीं मुझसे गिर गया। बहुत ढूंढा, लेकिन कुछ पता नहीं चला। चाय के लिये चीनी कम हो गई थी। वही लाने के लिए सवेरे-सवेरे मैं घर से निकला था।

'नोट को मुर्री में खोंस लेने का मर्ज़ है। कभी धोती जो

ढीली-ढाली रह जाती है, तो पैसे गिरते समय ध्वनि और शब्दों से अपना गिरना बतला देते हैं। किन्तु नोट ऐसा नहीं करते, गिरते ही धरती को छूकर पराये बनने में उन्हें देर नहीं लगती।

'नोट मैंने बहुत ढूँढा, लेकिन कहीं मिला नहीं।

'सायंकाल जब मैं घर लौटा, तो माँ मुझे देखकर हँस पड़ीं। बोलीं—मैंने आज तुम्हारी गलती पकड़ ली। जब तुम घर से गये थे, तब माया यहाँ बैठी हुई थी। फिर तुरन्त वह भी तुम्हारे पीछे-पीछे चल दी। दरवाज़े के आगे वह बढ़ी ही थी कि खँडहर के किनारे उसे दस रुपये का वह नोट मिल गया।

'आश्चर्य और प्रसन्नता के साथ मैंने उत्तर दिया—"मिल गया! चलो अच्छा हुआ।"

'एकाएक मुझे देखते ही माँ गम्भीर हो गईं। बोलीं—अच्छा नहीं, यह बहुत बुरा हुआ। मुन्नी की माँ कह रही थीं—बुरी बात है। कोई सुने तो क्या कहे! सयानी लड़की के आगे नोट फेंककर चलना भले आदमियों का काम नहीं। तुम्हारा तो कुछ नहीं बिगड़ता, पर मेरी लड़की के लिये तो लाज का प्रश्न है।"

'इसके बाद माँ बोलीं—"मैं इस बात को आज साफ़ कर लेना चाहती हूँ।"

'मैंने माँ को बहुत समझाया कि ऐसी कोई बात नहीं। लेकिन तब माँ हँस पड़ीं। बोलीं—"तुम कुछ भी कहो, लेकिन मन छिपा नहीं रहता। मैं जानती हूँ यह नोट तुमने माया को

कोई अच्छी-सी साड़ी खरीदने के लिये उसके आगे फेंक दिया होगा। पहले लोभ में आकर उसने उठा लिया होगा। पर फिर ऐसी दशा में लूँ कि न लूँ, इसी सोच-विचार में उसने लौटा दिया होगा। जो भी हो, इतना तो मैं भी कह सकती हूँ कि लड़की बहुत भोली और भली है।

'मैंने धीरे से केवल इतना कह दिया—"मैं कुछ नहीं जानता।"

'करवट बदलते हुए भवानी बाबू साहस करके सोचने लगे—'आज मुझे लगता है कि सब कुछ मिथ्या होने पर भी माया ने मुझे ठग लिया था!'

'अब सत्यवती छः महीने की हो गई थी और राधेगोविन्द पैरों के बल चलने लगा था। एक बार मैंने एकादशी को फिर लाने की चेष्टा की, किन्तु मुझे सफलता नहीं मिली। बल्कि सास से झगड़ा हो गया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—'मेरी लड़की तुम्हारे घर नहीं जायेगी।—तब तक नहीं जायेगी, जब तक तुम माँ से अलग नहीं होगे।'

'उनके इस कथन के उत्तर पर मैंने भी कह दिया—'मैं तुम्हारी लड़की को छोड़ सकता हूँ। किन्तु माँ को किसी क़ीमत पर नहीं छोड़ सकता।'

'मैं जानता था, यह बात एकादशी को बुरी लगेगी। और ऐसा स्वाभाविक भी था।

इसके बाद वह दिन भी सामने आ गया, जब माया के साथ भवानी बाबू का विवाह हो गया।

—:०:—

४

जाह्नवी का जीवन एक तपस्या का जीवन था। तपस्या वह जिसमें मनुष्य दृढ़ आत्म-निष्ठा और संयम के साथ अपनी उन कामनाओं और इच्छाओं को दबा-दबाकर रहता है जो उसे विपथ गामिनी बनने को उभारती रहती हैं। ऐसी बात न थी कि जाह्नवी के मन में कोई कामना ही न रह गई हो। कामनाएँ थीं, पर उनका सम्बन्ध अब भोग-विलास के साथ न रह गया था। रह गया था केवल भरण-पोषण और संतान-पालन के साथ। वह अपने बच्चों को आदर्श-पुरुष बनाना चाहती थी। उसका उद्देश्य था कि मेरे बच्चे पढ़-लिखकर स्वावलंबी, मेधावी और आदर्श पुरुष बनें। पिता और स्वामी का उदाहरण उसके सामने था और उनके चरण-चिन्हों पर चलने में उसे संतोष और सुख का अनुभव होता था। रात दिन वह यही सोचती रहती—'क्या ऐसा भी कोई दिन होगा, जब हेम किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित होकर समाज और देश का गौरव बढ़ायेगा ? कभी-कभी तो वह स्वप्न में भी यही देखती कि हेम आई० ए० एस० की परीक्षा में प्रथम आया है। डी० एम० का पद उसके लिए निश्चित हो गया है। नगर के

प्रतिष्ठित लोग और उसके साथी उसे बधाई देने के लिए आ रहे हैं। नौकरानी उनके लिए चाय बना रही है। मेरा छोटा-सा किराये का घर है। मेहमान उसमें फैलकर बैठ नहीं पा रहे हैं। द्वार पर उनकी मोटरें खड़ी हैं। क्षेम उनके स्वागत में इधर से उधर दौड़ रहा है।

फिर एकाएक उसकी आँख खुल जाती। तब वह हेम को छाती से लगाकर उसका सिर सहलाने लगती। आनन्दाश्रु उसकी आँखों में तैरने लगते।

ऐसी बात न थी कि जाह्नवी को भूख न लगती हो। पर वह भूख को भूख ही माननी थी। भूख का अभिप्राय उसके लिए जीवन-यापन मात्र था। न स्वाद के साथ उसका कोई सम्बन्ध था, न तृप्ति के साथ। इसलिये वह प्रायः जलपान न करती। जब तक खुलकर भूख न लगती, तब तक कुछ भी न खाती और जब खाती तो केवल इस परिमाण में कि क्षुधा शांत हो जाय।

यही दशा वेष-भूषा के सम्बन्ध में थी। वस्त्रों की सुन्दरता उसे काटने लगती। इसलिए खादी के अतिरिक्त वह और कोई वस्त्र धारण न करती। कार्य-भार से वह इतनी दबी रहती कि इधर-उधर सोचने का उसे अवसर ही न मिलता। दिन को वह अपना सारा समय विद्यालय में देती। हेम और क्षेम दोनों बच्चे कान्वेन्ट में पढ़ते थे। उनके विद्यालय का भी वही समय था, जो उसके अध्यापन का। विद्यालय से लौटते समय वह उन्हें अपने साथ लेकर घर चली आती। बच्चों से मिलकर वह अपने जीवन का सारा दुःख भूल जाती थी। रिक्शे पर जाते

हुए रास्ते भर वह उन्हें दुलराती रहती ।—"यह देखो क्षेम, इक्का जा रहा है । इसे घोड़ा खींचता है ।"

तभी क्षेम कह देता—"धोला ।" और हेम के साथ-साथ जाह्नवी हँस पड़ती !

एक दिन उसने लम्बी और ऊँची उठी हुई, टेढ़ी गर्दन तथा लटकती हुई थूथुन के चतुष्पद को दिखलाते हुए कहा—"यह ऊँट है क्षेम ।'

क्षेम बोल उठा—"ऊँत !"

हेम मुस्कराने लगा ।

जाह्नवी बोली—आदमियों में भी ऊँट होते हैं क्षेम । जो क़द में लम्बे और कुछ दुबले-दुबले से होते हैं ।

क्षेम उस समय तो कुछ न बोला, पर दो दिन बाद उसने एक लम्बे आदमी को देखकर कह दिया—"ऊँत ।"—तो जाह्नवी ने उसे गोद में भरकर चूम लिया ।

जाह्नवी के सोने के कमरे में एक फोटोग्राफ़ टँगा रहता था । वह उसके स्वामी नंदनंदन बाबू का था, विवाह समय का ।

माथे पर रोरी-अक्षत हैं और गले में गजरा पड़ा है । मन में प्रसन्नता और मुद्रा में पुलक हास की झलक है ।

उसे याद हो आया, जब उन्होंने उसके गले में बांहें डालकर—कान के पास मुँह ले जाकर—कहा था—"जाह्नवी उस प्रवहमान धारा का नाम है, जिसका एक-एक बूँद अमृत होता है ।"

कमरे में प्रवेश करते समय वह कभी-कभी अत्यधिक भाव-मग्न हो उठती। उस फोटोग्राफ की ओर देखते-देखते उसकी आँखें भर आतीं। बच्चे साथ खड़े रहते। जाह्नवी जब आँसू पोंछने लगती, कभी-कभी हेम कोई प्रश्न कर देता।

एक दिन की बात है, हेम ने पूछा—"अम्मा, इस तस्वीर को देखकर तुम रोती क्यों हो ?"

रात के आठ बज गये थे। बाज़ार की दूकानें बन्द होने लगी थीं। ठिठुरन बढ़ रही थी; क्योंकि हवा डोल रही थी। फुटपाथ पर बैठा चायवाला चिल्ला रहा था—'गरम चाय पीते जाओ तो सरदी मज़ा पैदा करती रहेगी।' मलाई बेचनेवाला मंगली थाल की कोर में मिट्टी के तेल की डिब्बी जलाये घर को लौट रहा था। बस अपने स्टैंड पर खड़ी सवारी ले रही थी और आग बुझानेवाली एक दमकल घंटा बजाती हुई तेज़ी से दौड़ी जा रही थी।

हेम के प्रश्न से जाह्नवी की भावना और भी तीव्र हो उठी। करुणाविगलित आँखों से आँसू-पर-आँसू झरने लगे। सिसकियाँ उभर उठीं। आर्द्र कण्ठ से वह बोली—"यह तुम्हारे बाबू जी थे बेटा, जो तुम्हें छोड़कर चले गये हैं !"

जीवन की प्रत्येक स्थिति अतीत का एक उत्तर है और वर्तमान के लिए एक प्रश्न—एक समस्या। बच्चे समस्या को भले ही न समझते हों, लेकिन वे प्रश्न करना जानते हैं। पलँग पर जाते-जाते हेम ने भी प्रश्न कर दिया—"बाबू कहाँ चले गये हैं अम्मा ?"

जाह्नवी ने आँसू पोंछते हुए उत्तर दिया—"वह स्वर्ग को

चले गये हैं बेटा।"

जीवन प्रश्नों का प्रश्न है। हेम फिर तुरन्त पूछ बैठा—"बाबू वहाँ से कब लौटेंगे अम्मा ?"

जाह्नवी का उत्तर था—"वे अब कभी नहीं लौटेंगे।" कथन के साथ वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

हेम जाह्नवी के गले से लिपट गया और बोला—"तुम रोओगी, तो मैं भी रोऊँगा। मैं बाबूजी के पास जाऊँगा और उनसे कहूँगा—अम्मा बहुत रोती हैं। अब तुम चलो हमारे साथ। मैं बाबू को बुला लाऊँगा। वह ज़रूर आ जायंगे क्यों अम्मा ?"

अबोध हेम की इन बालसारल्य-समन्वित बोधहीन बातों को सुनकर जाह्नवी क्षणभर के लिये अपना सारा दुःख भूल गई। उसने झट अपने आँसू पोंछ डाले। इस प्रसंग में फिर अधिक कुछ कहना उसने उचित नहीं समझा। केवल इतना भर कह दिया—"ऐसा नहीं होता है, बेटा।" फिर जब उसे इतने से संतोष नहीं हुआ तब उसने इतना और कह दिया—"आदमी जब मर जाता है, तब वह लौटकर नही आता।"

जाह्नवी चाहती थी कि अब यह प्रसंग यहीं समाप्त हो जाय। पर हेम ने फिर तुरन्त प्रश्न कर दिया—"मरना कैसा होता है अम्मा, आदमी कैसे मरता है ?"

जाह्नवी विचार में पड़ गई थी। हेम की बात का वह क्या उत्तर दे ? और दे भी, तो किस भाँति ? वह ऐसा उत्तर देना चाहती थी जो हेम की समझ में भी आ जाय और वह फिर कोई प्रश्न न करे।

तब उसने कह दिया—"संसार की हर एक चीज नाशवान है। तुम नित्य देखते हो पेड़ों में हरे पत्ते लगे रहते हैं और पौधों में रंग-बिरंगे फूल खिले रहते हैं। पतझड़ आता है, पत्ते सूखकर धरती पर गिर जाते हैं। फूल भी या तो तोड़ लिये जाते हैं, या अच्छी तरह खिल जाने के बाद अपने आप झड़ जाते हैं।"

उसे स्मरण आ गया कि पड़ोस के मकान में बकरी का बच्चा जाड़ा सहन न कर सकने के कारण ठिठुरकर मर गया था। अतः उसका स्मरण दिलाती हुई जाह्नवी बोली—"तुमने देखा तो था, पड़ोस के जगन्नाथ चाचा के घर में बकरी का एक बच्चा मर गया था। बस, इसी प्रकार आदमी भी एक दिन मर जाता है। मर जाने पर वह टस-से-मस नहीं होता। हिल नहीं पाता, बोल नहीं सकता, उठ नहीं सकता, फिर वह किसी काम का नहीं रहता। यहाँ तक कि अगर भूमि के अन्दर गाड़ा न जाय, नदी में बहा न दिया जाय, या जला न डाला जाय तो उसका सारा बदन सड़ जाय! उसके शरीर से दुर्गन्ध फूट-फूट कर अपने आसपास की हवा तक को खराब कर दे।'

जाह्नवी आँसू पोंछ चुकी थी। उसका ध्यान बट गया था। वह इस चेष्टा में थी कि हेम ने जो प्रसंग उठाया है, उसको वह समझ जाय और फिर बात भी आगे न बढ़े।

परन्तु तभी हेमने पुनः प्रश्न कर दिया—"अम्मा, चाचा के घर की मुनमुन तो सर्दी खाकर मरी थी। हमारे यहां कितने अधिक कपड़े हैं! फिर भी उन्हें सर्दी कैसे लग गई?

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"वे सर्दी खाकर नहीं मरे।

उनको बहुत तेज बुखार आ गया था। दवाई बहुत की गई, मगर वह बुखार ही कुछ ऐसा तेज़ था कि कोई दवा कारगर न हुई। बात यह है बेटा कि रोग की तो दवा होती है, पर मृत्यु की कोई दवा नहीं होती। मौत जब आ जाती है, तब वह आदमी को किसी तरह नहीं छोड़ती।"

हेम बोल उठा—"तब तो मौत बहुत बदमाश होती है अम्मा! वह आयेगी, तो हम उसे डंडे से बहुत मारेंगे। हम उससे कहेंगे कि तुम हमारे बाबू को क्यों ले गयी हो? लौटा ले आओ, तब तो वह हमारी बात ज़रूर मान लेगी। क्यों, मान लेगी न? बोलो, बोलो अम्मा?"

जाह्नवी यद्यपि असमंजस में पड़ गई, फिर भी समझाने का प्रयत्न करते हुई बोली—"ऐसा नहीं होता है बेटा। उस दिन शीशे का गिलास तुम से टूट गया था। वह जुड़ नहीं सकता। तुम उसे जोड़ नहीं सकते। अगर ऐसा कोई पदार्थ बन भी जाय, जिससे टूटी हुई चीजें जुड़ जायँ, फिर भी जोड़ तो मालूम ही हो जायगा। मिट्टी का खिलौना तुम कितनी-कितनी बार फोड़ चुके हो। आग बनाने के लिए मैं अक्सर काग़ज़ जलाती हूँ। जब जलकर वह राख हो जाता है, तब हम उसे फिर काग़ज़ नहीं बना सक्रते। हालाँकि कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं, जो अपना रूप बदल डालने के बाद भी अपने पहले रूप में आ जाती हैं। ऐसे ही आदमी जब बुड्ढा हो जाता है या उसे कोई ऐसी बीमारी हो जाती है जो अच्छी नहीं होती तब वह मर जाता है।"

जाह्नवी जानती थी, हेम मानेगा नहीं। वह फिर प्रश्न करेगा। अन्त में उसका अनुमान सही निकला।

हेम ने प्रश्न कर दिया—"अच्छा, आदमी बुड्ढा क्यों होता है अम्मा ?"

जाह्नवी इस बार हँस पड़ी। बोली—"तुम जब दिन भर खेलते हो, तो रात होते-होते तुम्हे नींद आ जाती है। तब तुम सो जाते हो। ऐसे ही आदमी काम करते-करते जब बहुत शिथिल हो जाता है, यहाँ तक कि उसका शरीर काम नहीं देता, तब वह सदा के लिए सो जाता है। फिर वह कभी नहीं जागता, कभी नहीं उठता। इसी को मर जाना कहते हैं।"

जाह्नवी सोचने लगी—'हेम अब भी प्रश्न ज़रूर करेगा।'

तभी हेम तत्काल बोल उठा—"मगर अम्मा, हम जब सो जाते हैं तब नींद पूरी करके फिर उठ भी तो पड़ते हैं।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"हम इसलिए उठ जाते हैं कि हमारे भीतर, हमारे बदन में, फिर से एक नये बल का संचार हो उठता है। हम सोते ही इसलिये हैं कि हमारी थकान मिट जाय; हमें दिन भर काम जो करना होता है। हमें अपने ही भीतर से नया बल उभारना होता है। जब हमारी थकान दूर हो जाती है, मिट जाती है, तब हम जाग पड़ते हैं। लेकिन आदमी जब बुड्ढा हो जाता है, तब उसका शरीर बेकाम हो जाता है। यहाँ तक कि धीरे-धीरे उसका सारा बल नष्ट हो जाता है। इन्द्रियाँ काम नहीं देतीं। तुमने तो बुड्ढे आदमी देखे हैं। तुम्हारे नाना के दादा कितने बुड्ढे हो गये हैं! उनसे उठा नहीं जाता और अब तो आँखों से भी दिखलाई नहीं पड़ता। बाल

कितने सफ़ेद हो गये हैं ! मुँह में कितनी झुर्रियां पड़ गई हैं। हाथों के ऊपर को उभरी हुई नसें तो तुमने देखी ही हैं। तुमने यह भी देखा ही होगा कि कभी-कभी पलँग पर लेटे-लेटे पेशाब हो जाती है। सहारा लेकर टट्टी जाने को जो उठते हैं तो उठते-उठते धोती खराब हो जाती है। ऐसा बुढ़ापा एक दिन सब को आता है। इसी बुढ़ापे के बाद फिर उसे मौत आ जाती है। वह सदा के लिए सो जाता है। नींद कितनी प्यारी होती है, यह तुम जानते हो। तो जब आदमी जीना नहीं चाहता, तब उसे मौत की नींद भी प्यारी लगती है।"

हेम सब बातें ध्यान से सुनता जाता था। कुछ बातें उसकी समझ में आ रही थीं, कुछ नहीं भी आ रही थीं।

तब उसने फिर प्रश्न कर दिया—"मगर अम्मा, तुमने तो बतलाया था कि बाबू को बुढ़ापा नहीं आया था, बीमारी आई थी। तो उनको बीमारी क्यों आई थी अम्मा ? बीमारी तो बूढ़ों को आती है।"

इस बार हेम का प्रश्न जाह्नवी को बहुत प्यारा लगा और उसने कह दिया—"तुम्हारे बाबू में कुछ आदतें बड़ी खराब पड़ गयीं थीं। वे बड़ों का कहना नहीं मानते थे, उनके उपदेशों से वे घृणा करते थे। उनका कहना था कि आदमी अपराध करके जो अनुभव करता है, वही उसका सबसे बड़ा और मुख्य शिक्षण होता है। उनमें साहस इतना था कि तृप्ति के लिए वह कोई भी अपराध कर सकते थे ! उनके खर्चे भी बड़े ऊल-जलूल होते थे ! उन्हें संगीत बहुत प्यारा लगता था। इसीलिये उनके पास पैसे की सदा कमी बनी रहती थी। किसी का भी

गाना पसंद आ जाय, कि बस, फिर उसकी कोई बात वे टालते न थे और इधर तो वे शराब भी बहुत पीने लगे थे।"

बाईं ओर क्षेम पड़ा सो रहा था। जाह्नवी हेम को पलँग पर अपने साथ दाईं ओर लिटाये हुए थी। मुँह को छोड़कर लिहाफ़ से उसका सारा शरीर ढका हुआ था। उसका दायाँ हाथ हेम की पीठ पर था, जिससे वह कभी-कभी उसके मुलायम केशों को भी सहलाने लगती थी।

हेम एकदम से चौंक पड़ा। उसके मुँह से निकल गया—"शराब!"

जाह्नवी ने कह दिया—"हाँ, शराब। शराब के बिना वे रह न सकते थे। यहाँ तक कि कचहरी में भी बहस करने से पहले अपनी बैठक में ही दो पेग लिये बिना वे अदालत की ओर एक पग आगे न बढ़ाते थे।"

"मगर अम्मा नानी कहती थी कि जब मैं छोटा था, तब सर्दी के दिनों में दूध के साथ थोड़ी-सी ब्राण्डी मुझे भी दी जाती थी।"

"हाँ, दी जाती थी।" जाह्नवी को कहना पड़ा—"मगर वह दवा का ही एक रूप रहता था। लेकिन तुम्हारे बाबू को तो उसकी लत पड़ गई थी। खर्चे ज्यादा थे और लतें बुरी थीं। धीरे-धीरे जिगर खराब हो गया। कोई जानता न था कि इतनी जल्दी मौत इन्हें उठा ले जायगी। जिस दिन उनको बहुत तेज़ बुखार आया, उस दिन मैं स्वयं भी न जानती थी, कि इस बार ये बचेंगे नहीं। कोई नहीं जानता कि मौत कब आयगी। यों तो वह बच्चे, जवान और वृद्ध सभी को आती है।

किसी पर वह दया नहीं करती और किसी को क्षमा भी नहीं करती। वह इतनी स्वतंत्र और स्वेच्छाचारी है कि बुलाने से नहीं आती और बिना बुलाए आ पहुँचती है।"

हेम से फिर न रहा गया। वह बोला—"ऐसा नहीं हो सकता अम्मा कि मौत किसी को न आये ?"

जाह्नवी पहले मुसकरा उठी। हेम का यह प्रश्न उसे बड़ा प्यारा लगा था। उसने उत्तर दिया—"ऐसा नहीं हो सकता बेटा—किसी तरह नहीं हो सकता। बीज जब धरती पर गिरता है, मिट्टी उसे अपने में मिला लेती है। सर्दी, नमी और गर्मी पाकर बीज धीरे-धीरे सड़ जाता है, तब उसमें अंकुर फूट उठता है। तो बीज का सड़ जाना, उसका नष्ट हो जाना ही, मरण है। लेकिन उसका अँकुआ फूटना सृष्टि है, जन्म है। जब तक बीज सड़ेगा नहीं, तब तक अंकुर भी नहीं फूटेगा। जीव भी जब मर जाता है, तभी उसका जन्म होता है। जन्म भी एक परिवर्तन का नाम है। अनाज खेत में पैदा होता है। उसको पीस लेने से आटा बनता है। आटे से ही रोटी पकाई जाती है, जिसे हम खाते हैं। अब ज़रा सोचो, बीज ने अपने कितने रूप बदल डाले हैं! उसका अंकुर जो फूटता है वह भी बीज का ही एक रूप होता है—बदला हुआ रूप। ऐसे ही बच्चा जब जन्म लेता है तब वह किसी बूढ़े, जवान या बच्चे के मरण का बदला हुआ रूप होता है। मनुष्य की आत्मा कभी मरती नहीं, वह सदा अपने रूप बदलती रहती है। तुम्हारे बाबू भी मरने के बाद कहीं-न-कहीं पैदा हो चुके होंगे। हो सकता है कि वे क्षेम से कुछ छोटे हों।"

इस बार जाह्नवी की बात सुनकर हेम उछल पड़ा क्या, बोला—"तो क्या बाबू मरे नहीं हैं अम्मा ? वे कहीं पैदा हो चुके हैं।"

जाह्नवी मुसकराने लगी। बोली—"हाँ, बेटा ! वे अवश्य कहीं पैदा हो गये होंगे।"

हेम पुलकित होकर तत्काल बोल उठा—"तो हम उनको ढूंढ़ लायेंगे, अम्मा ! जहाँ वे होंगे, हम वहीं पहुँच जायँगे। हम झट से उन्हें पहचान लेंगे। हम उनसे कहेंगे—अम्मा ने तुमको बुलाया है। तब वह ज़रूर आजायेंगे। आजायँगे न अम्मा ?"

जाह्नवी हँस पड़ी, बोली—"दुनियाँ बहुत बड़ी है बेटा। तुम उन्हें खोज न पाओगे। तुम उन्हें पहचान भी न सकोगे। वे भी तुमको न पहचान सकेंगे। तब तुम उनको कैसे खोजोगे ? और मान लो, तुमने उन्हें खोज भी लिया, तो उन्हें तुम्हारी बात का विश्वास कैसे होगा ? आदमी को रूप प्यारा होता है, रूपान्तर नहीं। मेरे लिये ही नहीं, तुम्हारे लिए भी वही बाबू प्यारे थे और प्यारे हो सकते हैं, जो बयालिस वर्ष के थे। लेकिन नया जीवन पाकर वे अब—मैंने अभी बतलाया न, कि क्षेम से भी छोटे होंगे। वे अब जिस घर में पैदा होंगे, उसी को प्यार करते होंगे। उनके एक माँ होगी, बाबू होंगे, घर-द्वार, धन-दौलत होगी। वे लोग भला उन्हें आने भी देंगे ? कोई भला तुम्हारी बात का विश्वास भी करेगा ? हो सकता है वह खुद ही कह दें—तुम झूठ बोलते हो, मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ। अब तुम्हीं सोचो, अगर उन्होंने तुमको ऐसा कोरा जवाब दे दिया, तो तुमको कितना दुःख होगा ?"

इस बार माँ की बात सुनकर हेम की आँखों में आँसू आ गये। जाह्नवी देर तक उसे समझाती और मनाती रही। प्यार की थपकियाँ दे-देकर उसने उसे बतलाया कि यह दुनियाँ बड़ी अजीब है बेटा। जितने भी प्यार के नाते और रिश्ते हैं, सब जीवन के साथ लगे हैं, रूप के साथ लगे हैं, रूप के मोह और स्वार्थ के साथ लगे हैं। तुम्हारे बाबू अगर आ भी जायँ, एक छोटे बच्चे के रूप में, तो वे अब हमारे किस काम के होंगे ? और हम उनको अपना समझ ही कैसे सकेंगे, बना ही कैसे पायेंगे ? अब वे दूसरे के हो चुके हैं, हमारे नहीं रह गये। इस रूपान्तर के लिये न हमारे मन में प्यार हो सकता है, न उनके मन में हमारे लिए। समझ गये न ? तो अब तुम बाबू के लिए कभी मत रोना, भला।"

चट से हेम ने कह दिया—"तो फिर तुम क्यों रोती हो ?"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"अच्छा, अब मैं उनके लिये कभी नहीं रोऊँगी। रात के नौ बज गये हैं। अब तुम सो जाओ।"

इस प्रकार जाह्नवी समय-समय पर हेम को ऐसी शिक्षा देती रहती, जिससे उसका दृष्टिकोण बौद्धिक बने और जीवन-संग्राम में वह सदा कृतकार्य होता रहे।

महामति श्रीरामकृष्ण परमहंस का वचन है कि जो सोचता है—मैं जीव हूँ, वह जीव ही रहता है। पर जो अपने आपको ब्रह्म का अंश समझने लगता है वह जीवित अवस्था में

ही ब्रह्म में मिल जाता है। दृढ़ संकल्प शक्ति हो, तो वह जैसा चाहे, बन सकता है।

जाह्नवी लड़कियों को पढ़ाते समय प्रायः सोचा करती—क्या मैं शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेषता प्रदर्शित नहीं कर सकती ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मेरे यहाँ शिक्षा पाने वाली सब लड़कियाँ सदा उत्तीर्ण होती रहें ? कोई भी लड़की ऐसी न रहे जो अनुत्तीर्ण हो। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मुझसे शिक्षा ग्रहण करनेवाली लड़कियाँ आगे चलकर जब आदर्श ग्रहिणी बन जायँ, तब भी मुझको न भूलें। पिता-माता, भाई-बहन, देवर-स्वामी, जेठ-ससुर, में से किसी-न-किसी को—अथवा इनमें से अधिकांश व्यक्तियों तक को—एक बार यह सोचना पड़ जाय कि आखिर मेरी पत्नी, भाभी, बहू या लड़की का ऐसा धीर, गम्भीर कर्त्तव्य-निष्ठ, सरल और दृढ़ चरित्र पावन और आदर्श निर्माण किया किसने ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि लड़कियों के माता-पिता खोजते-खोजते सीधे मेरे घर चले आयें और मुझसे अनुरोध कर कहें कि कृपा करके मेरी लड़की को भी पढ़ा दीजिये—उसे भी अपने चरणों के निकट बैठने योग्य बना लीजिये।

सोचते-सोचते एक दिन उसने निश्चय किया मैं अपना यह स्वप्न पूरा करके मानूँगी। उसके इस निश्चय का परिणाम यह हुआ कि वह आत्म-निर्भर होकर शिक्षा देने लगी। जो महापुरुष उसके लिए व्याख्यान का विषय बनता, उसका वह घर पर एक बार अच्छी तरह मनन कर लेती। फिर कक्षा के कक्ष में आगत छात्राओं के समक्ष, कथा के रूप में, ऐसा

रोचक वर्णन करती कि सभी लड़कियाँ अवाक्, स्तब्ध, विस्मित हो होकर उसकी ओर एकटक ध्यानावस्थित-सी देखती रह जातीं। कोई-कोई छात्रा तो स्वप्नाविष्ट सी होकर सोचने लगती—'यह अध्यापिका नहीं, कोई देवी बोल रही है।'

एक बार उसने बतलाया कि ग्राहम एक प्रकार की घड़ियों का निर्माता था। उसने यह निर्माण-कार्य टामपियन से सीखा था और टामपियन इतना दक्ष घड़ी-साज़ था कि उसका नाम ही घड़ी को निर्दोष समझने के लिये प्रमाण बन जाता था।

एक बार कुछ ऐसा हुआ कि एक आदमी ने उसे धोखा दिया। एक नकली घड़ी उसके सामने रख दी, जिसमें 'टामपियन' का नामोल्लेख था। उसको देखते ही टामपियन मुसकराने लगा। घड़ीवाले को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—"क्यों, क्या बात है ?"

टामपियन ने उत्तर दिया—"अभी बतलाता हूँ।"

कथन के साथ ही उसने हथौड़ा उठाकर उस घड़ी पर ज़ोर से दे मारा।

इतने में घड़ीवाला चिल्ला उठा। बोला—"अरे, यह आपने क्या किया ? मेरी घड़ी आपने क्यों तोड़ डाली ? अब आपको इसका हर्जाना देना पड़ेगा।"

टामपियन ने कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना एक स्वनिर्मित नवीन घड़ी निकालकर उस व्यक्ति को दे दी और कह दिया—"लीजिये, मेरी बनायी हुई घड़ी यह है। और यही आपकी नकली घड़ी को नष्ट कर देने का हर्जाना है। और कुछ ?"

वह क्षण भर के लिये चुपचाप हो गया। पर फिर उसने कह दिया—"जो मेरी नकल करता है, मैं सोचता हूँ, वह मुझसे ईर्ष्या करके मेरी प्रतिष्ठा ही बढ़ाता है। इस हेतु उस छद्म निर्माता का कुछ-न-कुछ मान तो मुझे करना ही पड़ेगा।"

ग्राहक अवाक् हो उठा।

इस घटना की चर्चा करती हुई जाह्नवी बोली—"प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी तात्कालिक हानि कभी नहीं देखता। रात का अँधेरा उसके सामने कभी नहीं रहता। वह टकटकी लगाये उस क्षितिज की ओर देखा करता है, जिससे प्रातःकालीन बालरवि की लाली फूटती है।

प्रसंग समाप्त होते ही उषा ने कह दिया—"गुरु माँजी, कृपा करके ऐसी ही एक कोई कहानी और सुनाइये।"

जाह्नवी गद्-गद् होकर बोली—"कहानी तो मैं नित्य सुनाती हूँ। पर तुम लोगों के घर से कभी ऐसा कोई समाचार नहीं आता, जिससे विदित हो कि मेरी शिक्षा का तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव पड़ा है।"

उषा ने उत्तर दिया—"गुरु माँ जी, प्रभाव की बात तो मैं नहीं जानती। पर मेरी अम्मा ने दस-पाँच बार मुझसे कहा है कि वे किसी दिन अवश्य आपसे मिलेंगी। उस दिन आपने नैपोलियन के कारागारवास की कथा सुनाई थी। फिर अभी परसों बहादुरशाह की कथा सुनाई। मैंने माँ के सामने अपनी समझ से ज्यों-की-त्यों उतार देने की पूरी चेष्टा की थी। करुणा उत्पन्न हो जाने के कारण मेरा गला भर आया था। सुनकर अम्मा बड़ी प्रभावित हुई थीं। आँखों में आँसू भर

आये और रो पड़ीं। अंत में उन्होंने आँसू पोंछते हुए मुझसे कहा—"धन्य हैं तुम्हारी वे अध्यापिका गुरु माँ जी, जिनकी भावना-मयी अमर वाणी का प्रभाव तेरी जैसी चंचल और खिलाड़ी लड़की तक की बोली पर उतर आता है!"

आश्चर्य के साथ जाह्नवी ने कहा—"अच्छा, तब मैं तुमको इसी बात पर एक चुटकुला और सुनाये देती हूँ।"

एक बार सिसरो से एक सरदार बोला—"तुम सर्वथा नीच कुल के ठहरे। हमारी तुम्हारी क्या तुलना?"

तब रोम के उस महान् व्याख्याता ने अत्यन्त शालीनता से उत्तर दिया—"हाँ, तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। मेरी वंशगत कुलीनता का आज मेरे द्वारा शुभारम्भ हो रहा है और आपकी बहु-प्रचारित और बहु-घोषित कुलीनता का—आज और इसी क्षण से—अंत। क्योंकि वह कुलीन हो ही नहीं सकता, जिसके वार्तालाप में सभ्यता की झलक न हो शिष्टाचार का मार्दव नहीं होता।"

जाह्नवी का इतना कहना था कि कक्षा की सभी लड़कियों में एक बार 'वाह वाह' का कलरव गूँज उठा।

दमयन्ती बोली—"वास्तव में सिसरो ने बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया।"

सुहासिनी बोल उठी—"उच्चकोटि की प्रतिभा के बिना कोई व्यक्ति तत्काल इतना सुन्दर उत्तर कभी नहीं दे सकता।"

इतने में घंटा बज गया। परन्तु कोई लड़की टस से मस न हुई।

शकुन्तला अपनी कलाई घड़ी देखती हुई बोली—"अभी दो नहीं बजे। घंटा ढाई मिनट पहले ही बज गया है। कृपा करके ऐसा ही कोई एक प्रसंग और सुना दीजिये, बस एक।" और हाथ उठाकर उसने सभी लड़कियों को सम्बोधन करके कह दिया—"सावधान, कोई छात्रा तब तक बाहर न निकले, जब तक हम सब यह परि-कथा गुरु माँ जी से न सुनलें।"

अब जाह्नवी बोली—"तो फिर सुनो। एक घड़ीसाज ने अपनी बनाई हुई घड़ी एक व्यक्ति के हाथ में देते हुए कहा—'लीजिये महाशय, मैंने इसे बना दिया। अब आप इसको लेकर चाहे जैसे शीतोष्ण-प्रदेश में चले जाइये। यह मिनिट-टु-मिनिट आपका सच्चा साथ देगी। मैं आपको पाँच के बदले सात वर्ष का समय देता हूँ। चाहे जब लौटकर आइये। यदि समय संचालन में पाँच मिनिट का भी अन्तर पड़ गया, तो मैं आपके दाम वापस कर दूँगा"

इसके अनन्तर मुसकराते हुए जाह्नवी ने बतलाया—"यह घड़ीसाज़ और कोई नहीं, ग्राहम था। उसने घड़ी ग्राहक को दे दी। ग्राहक यहाँ लौट आया। संयोग से वह भारतीय था। कालान्तर में जब वह पुनः विदेश गया, तो वह ग्राहम के पास जाकर बोला—'लीजिये, मैं आपकी घड़ी वापस लाया हूँ। घड़ी देते समय आपने जो बात कही थी, आशा है, आपको उसका स्मरण होगा।"

ग्राहम ने उत्तर दिया—"हाँ, मुझे स्मरण है। कहिये

आपको मुझे कोई उलाहना तो नहीं देना है।"

ग्राहक ने उत्तर दिया—"देना है। मेरे पास इस घड़ी को रहते हुए सात वर्ष पूरे हो गये और मैंने देखा—इस-में पाँच मिनट से अधिक अन्तर पड़ गया है।"

ग्राहम ने शर्त के अनुसार घड़ी के दाम वापस करते हुए कहा—"अच्छी बात है। अपनी घड़ी के पूरे दाम वापस ले लीजिये।"

ग्राहक ने उत्तर दिया—"दाम मैं आपसे न लूँगा, चाहे आप दस गुना भी दें। पाँच मिनिट के अन्तरका हमारे देश में कोई विशेष महत्व नहीं माना जाता। मेरी मान्यता है कि आप की बनाई हुई घड़ियाँ निर्दोष होती हैं।"

ग्राहम ने उत्तर दिया—"नहीं, ऐसा नहीं होगा। दाम चुका देने के बाद मैं इस घड़ी को तोड़ सकता हूँ; लेकिन मैं अपना संकल्प नहीं तोड़ सकता। मेरा आदर्श है, सर्वथा निर्दोष घड़ी बनाना! और कथन के साथ एक क्षण भी रुके बिना वह घड़ी-सुधार के प्रस्तुत कार्य में पुनः लीन हो गया।

जाह्नवी बोली अब इस प्रसंग में मैं इतना और बतला देना चाहती हूँ कि इसी ग्राहम की बनाई हुई एक घड़ी ग्रीन-विच की वेधशाला में अब तक सुशोभित है। उसे वहाँ स्थापित हुए दो सौ वर्ष से अधिक समय बीत चुका है। पन्द्रह मास के बाद केवल एक बार उसे देखना पड़ता है। ग्राहम और उसके गुरु टामपियन की समाधियाँ वेस्ट मिन्स्टर के गिरजे में अब तक स्थापित हैं।

परिकथा समाप्त हो गई। अन्त में जाह्नवी ने कहा—

"अगर मेरी इन शिक्षाओं का तुम्हारे आचार-धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो मेरी साधना व्यर्थ है, मेरी लगन व्यर्थ है, मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं तुम सबसे एक आशा रखती हूँ। क्या मेरा स्वप्न पूरा होगा ?"

जाह्नवी के इस कथन के अनन्तर कमरे में एक समवेत स्वर गूँज उठा—

"होगा, होकर रहेगा।"

इस प्रकार जब जाह्नवी उस विद्यालय में धीरे-धीरे अपना आदर्श स्थापित करने में सफल होने लगी, तभी अकस्मात् एक दिन नियति हँसने लगीं।

—:o:—

५

जाह्नवी जिस विद्यालय में अध्यापिका थी, उसकी सेक्रेटरी थी मल्लिका देवी। उनके स्वामी का नाम था घनानन्द मलहोत्रा। मलहोत्रा साहब एम० एल० ए० थे। उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। वे जब मंच पर खड़े होते, तो जन-समुदाय में एक उत्साह पूर्ण हलचल उपस्थित हो जाती। शरीर छरहरा, वर्ण गौर और मुख छवि मनोहर थी। नासिका तो विशेष रूप से सुन्दर थी। उनके केश कुछ छल्लेदार थे। जब वे सिर पर खादी की नोकदार शुभ्र टोपी धारण कर लेते तो कानों के ऊपरवाले भाग को, केशों के वे काले-काले छल्ले, पंक्ति बद्ध होकर ढक लेते। स्वच्छता में तो अपने समाज में वे एक उदाहरण थे। कुर्ते के ऊपर वे दुसूती की एक सदरी भी पहिनते। स्वच्छता-शृंगार की अभिनव शैली के आविष्कार में उन दिनों एक विदेशी पाउडर का प्रचलन हो गया था। अतः उनके वस्त्रों में उसी की पुट रहा करती। उनकी आँखों पर मोटे काले फ्रेम का चश्मा रहता और बाँये हाथ में मूल्यवान कलाई-घड़ी। नाक के उपर दोनों भृकुटियों के बीच में एक काला तिल था, जो उनकी सुन्दरता में सहायक बन गया था।

वे खादी का पैजामा पहनते और खादी के ही मोजे। यहाँ तक कि उनके जूते भी श्वेत नागरा शैली के रहते थे।

उनकी बैठक का कमरा सोफ़ा-सेट से सुशोभित रहता और भूमि पर कुटीर-उद्योग की झलक उत्पन्न करनेवाला रंगीन क़ालीन। बीच में एक आयताकार मेज़ थी, जिसमें काँच का एक जार रक्खा रहता। उसकी चमकदार रंगीन मछलियाँ जल-क्रीड़ा करती हुई इतनी प्यारी लगतीं कि आगुन्तक उन्हें एक बार इकटक देखता रह जाता।

इस कमरे में प्रवेश करते हुए बापू का एक तैलचित्र सामने ही दृष्टिगत होता। दायीं ओर पण्डित नेहरू और बाईं ओर श्री सुभाष बोस के फोटोग्राफ थे। बुद्ध भगवान का एक चित्र और था, जो द्वार के ठीक ऊपर बापू के चित्र के सामने था। कमरे में धूप-बत्तियाँ सदा सौरभ बिखेरती रहतीं। दिनाङ्क का पैड उत्तर की ओर था, जिसके अक्षर अंग्रेजी के थे। वह पैड उस समय का स्मरण दिलाता था, जब वारुणी के विज्ञापन के लिए ऐसे प्रयोग बड़े उपयोगी सिद्ध होते थे। यों तो यह कमरा अपनी सजधज में किसी प्रकार के अभाव की ओर कभी कोई इंगित न करता; किन्तु मानवप्रकृति के नाम पर कभी-कभी कोई ऐसी बात हो ही जाती, जिसे देख-सुनकर मन-ही-मन या मित्रों के साथ कटाक्ष-सहित एक बार मुसकराये बिना जी मानता न था।

एक बार कहीं उत्तरप्रदेश के एक मंत्री महोदय ने जब इस बैठक में पदार्पण किया, तब वास्तव में दिनाङ्क चौदह नवम्बर था, किन्तु पैड कह रहा था—तेरह अक्टूबर!

कदाचित् उस बैठक का कुछ ऐसा नियम बन गया था कि जब घनानन्द बाबू आनेवाले होते, तभी इस पैड पर श्रीमती मल्लिका देवी की दृष्टि जाती थी। और संयोग की बात कि उस रात को वे अकस्मात् आ गये थे।

घनानन्द बाबू का दोहरा व्यक्तित्व था। एक वह, जो समाज के साथ था, जनता के साथ था। दूसरा वह जो घर में था—मल्लिका देवी, बच्चों तथा नौकरों के साथ था। मंच पर वे गांधीवादी रहते और अहिंसा का सदा समर्थन करते। किन्तु व्यक्तिगत जीवन में हिंसा-अहिंसा में कोई विभेद न मानते थे। यह घोषित करते हुए उन्हें किंचित संकोच न होता कि जो आदमी जीवों पर दया नहीं करता, असहाय दीन-दुखियों की खुले हृदय से सहायता नहीं करता, पीड़ित मानवता के प्रति सक्रिय-सहानुभूति नहीं रखता, वह जन-सेवक नहीं हो सकता—और देशभक्त भी नहीं हो सकता। किन्तु उनके घर में मल्लिका देवी माँसाहार से बड़ी प्रीति रखती थीं और खादी तो कोई छूता भी न था। मल्लिका देवी प्रायः विदेशी वस्त्र धारण करतीं और बच्चे भी उन्हीं का अनुकरण करते। घर के पारस्परिक व्यवहारों में प्रायः अंग्रेजी बोली जाती। पीड़ित मानवता के प्रति सक्रिय सहानुभूति की स्थिति यह थी कि नौकरों को समय पर कभी वेतन न मिलता। उनका कहना था—हम कोई मिल-मालिक तो हैं नहीं, जो मज़दूरों का रक्त चूस-चूसकर निजी जीवन में पानी की तरह पैसा बहाते हैं। हम जन-सेवक आदमी ठहरे, सेवा ही हमारा धर्म हैं। तुम देखते ही हो कि हमारे यहाँ खाने और कपड़े में कोई भेद नहीं होता।

हम नौकरों को परिवार का एक अंग मानते हैं।'

इस स्थिति का परिणाम यह होता कि जब किसी नौकर को खर्चे की जरूरत पड़ती, तब आठ दिन पहले से पीछे पड़े बिना उसे टका न मिलता। और जो कभी मिलता भी, तो बीस रुपये की माँग पर दस रुपये और पचास रुपये की माँग पर पन्द्रह रुपये।

घनानन्द बाबू हिसाब रखने के पक्षपाती न थे। उनका कहना था कि पाई-पाई का हिसाब वह लोग रखते हैं, जो मक्खीचूस होते हैं। हमको इस बात से कोई मतलब नहीं कि किसी का हमारे ऊपर क्या निकलता है। हमारे लिए महत्व केवल इस बात में है कि उसकी तात्कालिक आवश्यकता क्या है?

मल्लिका देवी को समाज में मान पाने का बड़ा चाव था। सदा वे यही सोचा करतीं कि सामाजिक संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों और समय-समय पर होनेवाले विविध सम्मेलनों का उद्घाटन करने के लिये सम्बन्धित व्यक्तियों को जो मेरा स्मरण नहीं आता, अवश्य ही इसमें कोई रहस्य है। समाज में कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं, जो मुझसे ईर्ष्या रखते और मेरी उन्नति से जलते हैं।

कदाचित् यही कारण था कि मल्लिका देवी नगर में सम्मान पाने का कोई-न-कोई नवीन प्रयोग नित्य करती रहतीं। जब किसी संस्था का जन्म होने लगता, तब उन स्त्रियों द्वारा वे अपना मन्तव्य सिद्ध होने की पूरी चेष्टा करती; जो उनके घर आती-जाती और उनके परामर्शों पर चलती रहती थीं।

इन स्त्रियों को अपने वृन्द में सम्मिलित करने की एक विशेष नीति रहती। या तो वह किसी धनाढ्य की गृहिणी होतीं, या किसी असाधारण व्यक्तित्ववाले नेता, अधिकारी अथवा विद्वान की धर्म-पत्नी। उनके मन में ऐश्वर्य, पद, प्रभाव और अनुशासन-सम्बन्धी मेधावी तथा व्युत्पन्न व्यक्तियों को मिलाये रखने की भावना सदा काम करती रहती। वे सोचती थीं कि ऐसे लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित रखने में उस प्रतिभा के अध्ययन का अवसर निरन्तर मिलता रहेगा, जो जन-समुदाय को प्रभावित, अनुकूल तथा प्रशंसक बनाए रखती है। इसीलिए असाधारण प्रतिभा की अनुसंधान-जिज्ञासा में उनका मन निरन्तर सजग और तरंगित बना रहता था।

ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा थी, बुध का दिन था और दिनाङ्क था बारह जून। गगन से श्याम-घटायें हट गई थीं। पवनदोलन शान्त था। वातावरण में ऊष्मा इतनी अधिक थी कि पंखे के बिना एक क्षण को भी आराम न मिलता था। उस संध्या बेला में बिरागी-जन सरसैय्याघाट से उतरकर रेणु-मार्ग के आगे, गंगा-तीरे आसन जमाये, शंकर स्तवन कर रहे थे और अनुरागी जन बँगलों के भीतर लान पर बैठे या तो कुल्फी-मलाई उड़ा रहे थे, या रेडियो-संगीत सुन रहे थे। दूकानों के श्रम-जीवी अन्दर बैठे हुए या तो माल रख रहे थे, उसे दिखा रहे थे, या सड़कों पर गाँठों को ठेलों और ठेलागाड़ियों पर चढ़ाने उतारने में पसीना बहा रहे थे। कुछ ऐसे भी मनचले

अवसरवादी तरुण थे, जो अपनी प्रेमिकाओं अथवा अमरांगनाओं के साथ गंगा-स्नान के बहाने जल-क्रीड़ा-निमग्न थे। जिन घरों में बिजली के पंखे नहीं थे, उनके नर-नारी अर्द्ध-नग्न अवस्था में आँगन में खाट डाले खजूर का पंखा डुला-डुलाकर, किसी प्रकार बच्चों के साथ-साथ अपना भी विवश मनबोधन कर रहे थे।

चाँदनी अब छिटक चली थी। बँगले के लान की हरी-हरी दूर्वा पर, पाँच आराम कुर्सियों के बीच, एक गोल टेबिल थी, जिसमें गुलाब का एक बड़ा पुष्प-गुच्छ इस भाँति रक्खा हुआ था कि कुर्सी पर आसीन प्रत्येक महिला के सामने पुष्पों का कोई-न-कोई खण्ड-गुच्छ वृन्तों सहित झुका हुआ अंतर्मन की बात का इंगित करता प्रतीत होता था। तीन फ़ीट लम्बे स्टैंड पर बिजली का पंखा चल रहा था; उधर भीतर से रेडियो-संगीत की मनोहर वाद्य-ध्वनियाँ आ रही थीं।

इतने में मल्लिका देवी ने बिसकिट वर्ण की सितारों जड़ी साड़ी को वाम-स्कन्ध पर लहराते हुए द्वार-मण्डप के बाहर आकर सहसा रुकते-रुकते पूछा—"मेरा ख्याल है, एक टेबिल-लैम्प के बिना काम न चलेगा। क्यों शोभा ?"

शोभा नगर-पालिका के एक भूतपूर्व सभापति की छोटी बहन थी। सुन्दर कविता लिखने और फिर उसका परममनोहर पाठ करने में उसने यथेष्ट कीर्ति-अर्जना की थी। मन्द हरित वर्ण की आपाद वेष-भूषा में, रम्भा-पल्लव शैली के हरे बटुवे को दाँयीं ओर रखते हुए, उसने उत्तर दिया—"मुझे तो ऐसी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। पूर्ण चन्द्रिका की शुभ्र शीतल

रश्मियों में बिजली की रोशनी मेरी आँखों को कभी सहन नहीं होती।"

इसी क्षण शाल्मली देवी शोभा की ओर उन्मुख होकर धीरे से बोल उठीं—"सहन तो मुझे भी नहीं होती, शोभारानी।"

शाल्मली देवी उस विद्यालय की मुख्याध्यापिका थीं, जिसकी मंत्राणी मल्लिका देवी थीं। अवस्था तो उनकी पैंतीस छत्तीस की होगी; पर विवाह उनका अब तक नहीं हुआ था। क्यों नहीं हुआ था, इसके कई कारण थे; जिनमें प्रमुख यह था कि उनकी माता उनके पिता की विवाहिता पत्नी न होकर एक छद्मवासिनी उपपत्नी थीं। इस कारण उनका विवाह अपने समाज में होना सम्भव नहीं था। परन्तु शिक्षा-क्षेत्र में वे बड़ी उन्नतिशील सिद्ध हुई थीं। यहाँ तक कि 'सामाजिक और व्यक्तिगत आचार-नीति का जीवन के विकास पर तुलनात्मक प्रभाव' नामक निबन्ध पर उन्हें पी० एच० डी० की उपाधि भी मिल चुकी थी। कुछ स्थूलता के सिवा, उनके शरीर पर, समधिक कौमार्य-जीवन का, कोई विशेष प्रभाव न पड़ा था। किन्तु उनकी गम्भीरता स्पृहणीय थी। उनका प्रत्येक कथन एक अर्थ-गाम्भीर्य रखता था। नयनों के नीचे उत्पल-पलकों पर कुछ कालिमा अवश्य आ गई थी; पर सौंदर्य-वैभव अब भी पूर्णतः सुरक्षित और चित्ताकर्षक बना हुआ था। अनुशासन की तो वे एक उदाहरणीय प्रतिमा थीं।

एक के स्थान पर, दो के विरोध करने पर, मल्लिका देवी भी आगे बढ़कर शाल्मली के निकटवाली कुरसी पर आसीन

हो गईं ।

इतने में अनारकली ने कह दिया—"आज की पार्टी सदा स्मरण रहेगी ।"

अनारकली नगर के एक सम्भ्रान्त पूँजीपति की द्वितीय धर्मपत्नी थीं । अंग्रेज़ी में उन्होंने एम.ए. किया था और दिल्ली में होनेवाले नृत्य-कला के एक अखिल-भारतीय सांस्कृतिक महोत्सव की प्रतियोगिता में प्रथम पारितोषिक-स्वरूप एक स्वर्ण-पदक और नाना उपहारों में—जिनमें सेठ विद्यापति का भी प्रमुख भाग था—सब मिलाकर कोई पाँच सहस्र रुपये प्राप्त किये थे । अन्त में सेठ विद्यापति ने उनसे विधिवत् विवाह कर उन्हें सदा के लिये अपनी अंक-शायिनी बना लिया था । विवाह के पश्चात् नृत्य-कला का सार्वजनिक-प्रदर्शन तो अनार-कली ने बन्द कर दिया था, पर व्यक्तिगत उत्सवों के लिए यदि कभी सेठजी का अनुरोध होता, तो उसका पालन करने में उन्हें कोई आपत्ति न होती थी ।

"स्मरण तो अवश्य रहेगा ।" स्वीकारोक्ति के साथ शाल्मली देवी कुछ गम्भीर हो गईं ।

मल्लिका देवी को यह बात कुछ रहस्यपूर्ण प्रतीत हुई । उन्होंने कह दिया—"स्मरण रहेगी भी और नहीं भी रहेगी । आज जो बात हमारे लिए स्मरणीय होती है, दस दिन बाद—नहीं तो दस मास बाद—वह विस्मरणीय बन जाती है । मनुष्य के मन का कोई घाव ऐसा नहीं कालक्षेप जिसे भर न सकता हो ।"

मल्लिकादेवी का इतना कहना था कि शाल्मली ने कह

दिया—"जहाँ तक विद्यालय के शिक्षण का सम्बन्ध है मुझे जाह्नवी के कार्य से कभी कोई शिकायत नहीं हुई। किन्तु जब उन्होंने सांस्कृतिक समारोहों में सक्रिय भाग लेने से इन्कार कर दिया, तब उनकी ओर से हमारा मन गिर गया। यह सही है कि वैधव्य की कठोरता ने उन्हें सांसारिक विषयों से विरक्त बना दिया है। यह भी सही है कि छोटे-छोटे बच्चों के कारण वे अतिरिक्त समय दे सकने की परिस्थिति में नहीं हैं। पर विद्यालय के हित की दृष्टि से हमारे लिए यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि जो व्यक्ति एक तो ऐसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम में भाग न ले, दूसरे प्रकारान्तर से विघ्न डाले, उसके साथ हमारा सम्बन्ध कितने दिन चल सकता है!"

शोभारानी को शाल्मली देवी की यह बात स्वीकार न थी। रह-रहकर उन्हें जाह्नवी की वह मुद्रा स्मरण आ रही थी, जिसमें आँसुओं की करुणा और कण्ठ की आर्द्रता छिपी हुई थी। उन्हें उसके कुछ शब्द तो बारम्बार स्मरण आ रहे थे।

अतएव उसने कह दिया—"मैं इससे सहमत नहीं हूँ। प्रतिभा के क्षेत्र में मैं उनका सबसे अधिक आदर करती थी। मुझे उनके ये शब्द कभी नहीं भूलेंगे।—और टार्च जला कर उन्होंने अपनी नोट-बुक निकालकर तुरन्त पढ़ दिया।—मुझे इस विद्यालय की ये दीवारें स्मरण आयेंगी, जिनमें बैठकर मैं छात्राओं के चरित्र-निर्माण का स्वप्न देखती थी। मुझे यह सभा-कक्ष स्मरण आयेगा, जिसमें बैठकर हम प्रफुल्ल मन से सरल चपल कन्याओं की बाल-सुलभ चंचलता देख-देखकर

अपना मनबोधन किंवा मनोरंजन किया करती थीं। और मुझे इस सरस्वती-मन्दिर का वह गुंजन स्मरण-आयेगा, जो हमें निरन्तर जीवन-साफल्य की पावन प्रेरणा देता रहता था। यह सही है कि विद्यालय की छात्राओं से मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध छूट रहा है। किन्तु यह भी सही है कि उनके साथ मेरा व्यक्तिगत, आत्मीय और आध्यात्मिक सम्बन्ध सदा बना रहेगा। और अन्त में यही बात मैं अपनी सहयोगिनी सखियों के सम्बन्ध में कहना चाहती हूँ। मैं उन्हें विश्वास दिलाती हूँ कि उनकी पावन प्रीति-रीति के वे नाना समवेदन, हास्य-विनोद के मधुर मनबोधन, समन्वय तथा सायुज्य के प्रकरणात्मक वे अनुरोध मैं कभी न भूलूँगी, जिनसे मैं यदि एक ओर जीवन की प्रेरणा पाती थी, तो दूसरी ओर संघर्ष के निर्मम आघात सहन करती हुई अन्त में सफलता की शोभा और मल्लिका का मन्दानिल सौरभानन्द भी लाभ करती थी।"

शोभारानी का यह कथन सुनकर अनारकली विमुग्ध हो उठी। ब्राउन मखमल से निर्मित और सुनहरे बार्डर से अलंकृत सैंडिल में अपना दाँया पैर डालते हुए, वह बोली—"मुझे भी अब कुछ ऐसा जान पड़ता है कि जाह्नवी देवी का सहयोग त्यागकर हमने बड़ी भूल की है।"

मल्लिका देवी का यह स्वभाव बन गया था कि जो कार्य हाथ में ले लेतीं, फिर उसके विषय में कोई प्रतिक्रिया उनसे सहन न होती थी। उन्हें सबसे अधिक आपत्ति इस बात पर थी कि जाह्नवी देवी अपनी विवशता प्रकट करने के लिये न तो मेरे बँगले पर आईं, न वे विद्यालय की मुख्याध्यापिका

शाल्मली देवी से ही मिलीं। अतः अनारकली की इस बात पर वे बोल उठीं—"मैं इस विषय में अब और कोई विचार सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैंने जीवन में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। मेरी दृष्टि सदा आगे ही पड़ती रही है। जैसा कुछ हमने सोचा, कर दिया। अब उस पर किसी प्रकार का पश्चात्ताप करना न मैं अपने लिए उचित समझती हूँ, न आप के लिए। मैं तो सदा यही सोचती हूँ—"जीवन एक कारवाँ है, जो सदा चलता रहता है।"

शाल्मली देवी चुपचाप बैठी हुई सब सुन रही थीं। वे कुछ कहना चाहती थीं, पर यह तै नहीं कर पा रही थीं कि कहें या न कहें।

इतने में मल्लिका देवी की बड़ी लड़की शेफाली एक सुन्दर कुतिया को साथ लिये आ पहुँची। उसके केश कुछ भूरे थे। लम्बे इतने कि कानों के नीचे तक लटकते हुए—और कोमल इतने कि रेशम के लच्छे से प्रतीत होते थे। आते ही वह मल्लिका की साड़ी में मुँह डाल उसके पैर सूँघने लगी।

मल्लिका ने उसके सिर पर हाथ रखकर थपथपाते हुए कह दिया—"क्या कहना है तुझे ?" और शेफाली बोल उठी—"ममी, मैंने तुमको एक बात नहीं बतलाई।"

मल्लिका ने पूछा—"कौन-सी बात ?"

शेफाली ने उत्तर दिया—"जाह्नवी मौसी आज हमारे यहाँ पार्टी में जब आई थीं, तब वे मुझे एक डब्बा दे गई थीं। उस डब्बे में बढ़िया पुस्तकें, रेशमी खादी के रूमाल और तरह-तरह की मिठाइयाँ रक्खी थीं।"

आश्चर्य के साथ मल्लिका ने पूछा—"तो तूने उसी समय मुझे बतलाया क्यों नहीं ?"

"हूँ", शेफाली ने मुँह मटकाते हुए गोदी की ओर बढ़कर कहा—"उन्होंने ही कहा था, इसको मेरे लौट जाने के बाद ही खोलना।"

मल्लिका अपना कुतूहल न रोक सकी। बोली—"मैं अभी आयी।" और कथन के साथ ही वह अन्दर जाने लगी।

इसी क्षण शोभा ने कह दिया—

"मगर प्यार के ऐसे उपहार को देखने की उत्सुकता केवल आप तक ही सीमित नहीं, मैं भी इसे अपना अधिकार समझती हूँ।"

इतने में अनारकली भी खड़ी हो गई।

शाल्मली को कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। अतः जब मल्लिका के साथ शोभा तथा अनारकली दोनों-की-दोनों चल खड़ी हुईं, तो उन्होंने भी अँगड़ाई लेते हुए कह दिया—"मैं तो अब आज्ञा चाहती हूँ। आज दोपहर से ही सिर में मीठा-मीठा दर्द है। व्यस्त रहने के कारण अब तक उस पर ध्यान नहीं गया था। इसलिए मैं तो अब जाऊँगी। जाह्नवी देवी के स्थान पर जो नियुक्ति करनी है, उसका विज्ञापन मेरे ख्याल से अब दे देना चाहिये।

"अवश्य।" कथन के साथ मल्लिका ने उत्तर दिया—"मगर थोड़ी देर अगर हम लोग और साथ बैठ लेते, तो ज्यादा अच्छा होता। ऐस्पिरीन की टेबिलेट मँगवाऊँ ?"

"नहीं, मेरा यह पुराना रोग है। आप इसकी फ़िकर न

करें—और मुझे अब जाने ही दें।" कथन के साथ शाल्मली देवी ने शोभा और अनारकली की ओर उन्मुख होकर इतना और जोड़ दिया कि वापस लौटते हुए आप दोनों अगर मेरे यहाँ भी दो मिनट को होती जायँ, तो मुझ पर यह आप दोनों की विशेष कृपा होगी।

अनारकली ने कानों के रत्नजटित कुण्डल हिलाते-हिलाते कुछ मुस्कराते हुए कह दिया—"यह कृपा मैं अवश्य करूँगी। क्योंकि आपके हाले नाजुक पर मुझे बहुत तरस आता है।"

"अच्छा, नमस्ते" कहकर सबको एक साथ सम्मिलित अभिवादन के साथ हाथ जोड़कर शाल्मली देवी जब चल ही दीं, तो मल्लिका देवी ने द्वार-मण्डप के निकट सीढ़ी पर बैठे माली के छोकरे से कह दिया—"अरे जंगलिया, शबराती से कह दे—दीदी को गाड़ी से भेज आये।"

फौरन, तपाक से उठता हुआ जंगलिया बोला—"अभी लीजिये।"

बैठक के भीतर सोफ़े पर बैठती हुई अनारकली ने कुछ धीरे से कहा—"लगता है, आज दीदी को जाह्नवी देवी का वास्तविक मूल्य मालूम पड़ा है। इतनी बातें हो गईं, पर वे कुछ नहीं बोलीं।"

शेफाली डब्बा लाने चली गई थी। मल्लिका देवी कुतिया के सिर पर हल्की सी चपत जमा-जमाकर उसको प्यार करने में लीन थीं।

अनारकली की बात ज्यों ही उनके कानों में पड़ीं, त्यों ही उन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर कह दिया—"मैं जानती हूँ,

दीदी मन से स्वस्थ नहीं रहती। पर मैं यह भी जानती हूँ, वे बड़ी कर्तव्यनिष्ठ हैं। मैंने स्वयं जाह्नवी देवी से कहा था—"अभिनय एक कला है और कला के नाम पर हम को थोड़ा उदार बनने की आवश्यकता है। मैंने उनसे विद्यालय की ओर से होनेवाले नाटक में मीरा का अभिनय करने की विनय की थी। आप समझती हैं, कितना पवित्र रोल था। सच पूछें, तो उनके लिए यह एक गौरव की बात थी! अगर वे मीरा का पार्ट स्वीकार कर लेतीं तो एक बार नगर भर के सभ्य-समाज में चमक उठतीं।"

अनारकली के मुँह से निकल गया—"इसमें सन्देह नहीं।"

शोभा ने कुछ नहीं कहा। तभी मल्लिका देवी कुछ उत्तेजित हो उठीं। बोलीं—"पर उन्होंने मेरे इस अनुरोध की उपेक्षा की। उन्होंने मुझे कोरा उत्तर देते हुए कह दिया—'मैं असमर्थ हूं।' मैं उनकी इस असमर्थता का मूल्य समझती हूँ। जब दर-दर ठोकरें खाती फिरेंगी, तब उन्हें जीवन की यथार्थता का पता चलेगा।"

अनारकली को अपने वे दिन स्मरण हो आये, जब विश्वविद्यालय छोड़ देने के बाद एक दिन अचानक पिता का स्वर्गवास हो गया था। उसे अपने निजी खर्चे के लिए कभी-कभी माँ के सामने दो-दो रुपये तक को गिड़गिड़ाना पड़ता था।

वह कम्पित हो उठी। बोली—"सचमुच, बेकार हो जाने पर आदमी तीन कौड़ी का हो जाता है। सारी प्रतिभा उन्हीं घड़ियों की चेरी है, जो मानसिक संतुलन को स्थिर बनाये

रखती हैं।"

इतने में एक सुन्दर दफ्ती का डिब्बा लिये शेफाली आ पहुँची। जैसा उसने बतलाया था—खिलौने, पुस्तकें, रूमाल और टूंगने तथा चूसने की मिठाइयाँ—सारी वस्तुएं प्रथम श्रेणी की थीं। पर उत्तेजना के कारण मल्लिका ने एक सरसरी दृष्टि से देखकर डब्बे को उठाकर भूमि पर फेंकते हुए कह दिया—"सिली! इन्हीं थर्ड रेट चीजों को पाकर इतना फूल रही थी।"

शोभा सम्पन्न घर में अवश्य पली थी, किन्तु हृदय उसने एक कवयित्री का पाया था। अतः वह तुरन्त आवेश में आकर खड़ी हो गई। नयन रक्ताभ हो उठे, भृकुटियाँ तन गयीं। अधर फड़कने लगे। क्षणभर का भी विलम्ब किये बिना वह बोली—"अब तक मैं चुपचाप धैर्यपूर्वक सब सुनती और देखती रही। पर अब मुझे स्पष्ट रूप से कहना पड़ रहा है कि यदि कोई व्यक्ति बुरे बच्चों को भला और सच्चरित्र बना सकता है, ईर्ष्या-द्वेष रखनेवाले, पशु-मानवों के साथ भी अपना निर्वाह कर सकता है, अपने सैकड़ों साथियों के बीच युक्तिसंगत, प्रभावशाली और खरी बात कह सकता है, निर्माण के क्षेत्र में किसी भी काम को सुन्दरतापूर्वक करके दिखा सकता है, तो धनहीन, कंगाल, उपेक्षित और निरवलम्ब होने पर भी, जंगल में कुटिया बना कर रहे, तो भी संसार उसके द्वार तक जाने को एक मार्ग बना लेगा। आपने अभी समझा क्या है? मुझे बड़ा आश्चर्य है कि आप इतने भ्रम में हैं। ऐश्वर्य और

वैभव का विष आपकी रग-रग में भिद गया है। भले और बुरे की पहचान, जिसके बल पर जानवर होते हुए भी हम मनुष्य कहलाते हैं, आप में अब क़तई नहीं रह गई। अपनी बच्ची के लिए ऐसी सुन्दर भेंट पाकर कोई भी धन्य हो जाता। पर इसकी कृतज्ञता स्वीकार करने के बदले, प्रतिक्रिया वश आप ऐसी जुगुप्सा प्रकट कर रही हैं, जो आप जैसी उच्च स्तर की महिला के लिए सर्वथा अशोभन है। मैं एक बार नहीं, पचास बार आप की इस कुत्सित मनोवृत्ति पर घृणा प्रकट करती हूँ। मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहती हूँ कि जाह्नवी दीदी जैसी कर्मनिष्ठ और योग्य अध्यापिका आप अपनी इस महा-महिमान्वित संस्था के लिए जीवन भर न पा सकेंगी। विद्यालय की प्रबन्धकारिणी समिति से मैं अपना त्याग-पत्र कल ही भेज दूँगी। बस बहुत हो चुका। नमस्ते।"

मल्लिका देवी ने शोभा का हाथ पकड़कर उससे बैठने का बहुत अनुरोध किया, अन्त में क्षमा भी माँगी, किन्तु शोभा रानी किसी प्रकार न रुक सकीं।

अनारकली शोभा को अपने साथ लेकर आयी थी। अतः वह भी साथ हो ली। हाँ, चलते समय उसने इतना अवश्य कह दिया—"शोभा दीदी इस समय भावुकता में आकर अनाप-शनाप बक गई हैं। आप को इसका कुछ ख्याल न करना चाहिये। मैं उन्हें मनाने की पूरी चेष्टा करूंगी।"

कार स्टार्ट होते ही द्वार-मण्डप की सीढ़ी पर खड़ी हुई मल्लिका बोली—"कल प्रातःकाल की चाय तुम्हारे यहाँ तै

रही।"

अनारकली ने उत्तर दिया—"जरूर, जरूर।"

तब तक गाड़ी फाटक तक पहुँच चुकी थी।

—:o:—

६

शुभ्र धुली खादी का नया कुर्ता पैजामा धारण किये हुए हेम, भाल पर चूना मिली हुई हरिद्रा में ऊपर से अक्षत लगाये, जब जाह्नवी के हाथ से कटोरे का दूध पीने लगा, तब नीले मखमल की अलंकृत झालरदार टोपी दिये क्षेम ने भी अपने दोनों हाथ उठाकर कहना प्रारम्भ कर दिया—"औल अम तो, औल अम तो ?"

मकान और पास-पड़ोस की सभी लड़कियाँ, बहुएँ, बच्चे और प्रमदाएँ एक साथ हँस पड़ीं। जाह्नवी ने उसे गोद में भरते हुए चुम्मी ली और कह दिया—"तुमको भी पिलाते हैं बेटा, धीरज धरो।"

क्षेम ने पैर पटकते हुए उत्तर दिया—"अबी।" और इसके बाद वह फिर केवल दायाँ पैर पटकते हुए बोला—"अबी।"

जाह्नवी जानती थी कि क्षेम ज़रूर ज़िद करेगा। अतएव उसने दूसरा कटोरा, जो खिड़की के ऊपर ढका रखा था, उठा कर क्षेम के मुँह में लगा दिया। लड़कियों ने गुलाब के कुछ पुष्प-दल हेम और क्षेम दोनों पर बिखेर दिये।

दोनों बच्चे जब दूध पी चुके, तब क्षेम की दृष्टि एकाएक हेम के मुख पर जा पड़ी और वह अपने मस्तक पर, दोनों भृकुटियों के बीच, दाँये हाथ के अँगूठे से, ऊपर की ओर संकेत करता हुआ बोला—"अमतो बी लदाओ, लदाओ अमतो बी।"

एक बार पुनः कल-कलहास-ध्वनि उपस्थित नारी-वृन्द में गुंजित हो उठी। मकान-मालिक की धर्मपत्नी ने झट से क्षेम के मस्तक पर रोचना लगा दिया; उसे गोद में उठाकर उसके दोनों हाथों की चुम्मी ली और फिर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कह दिया—"राम-लक्ष्मण की-सी जोड़ी भगवान करे युग-युग जिये।"

थोड़ी देर में गीत-मांगल्य प्रारम्भ हो गया। लगभग दो घंटे तक पहले सोहर, दादरा और भजन होते रहे। फिर जाह्नवी ने केवल शकुन भर पूरा करने के नाते उपस्थित वृन्द में बतासे और गुलगुले बाँट दिये। फिर धीरे-धीरे सभी स्त्रियाँ, बहुएँ और बच्चे अपने-अपने घर लौट गये।

आज दिन भर में लगभग दस बार जाह्नवी आत्मलीन हो-होकर चिन्तित हुई होगी। उसे बार-बार उसी घटना का स्मरण आता रहा।—'क्या सोचा था, क्या हो गया।' आँसू भर आँखों से नहीं निकले, क्योंकि आज का दिन इसके लिये वर्जित था।

जो वर्जनाएँ और निषेधात्मक आग्रह सामाजिक संस्कारों पर प्रतिबन्ध के रूप में लागू होते हैं, उनका पालन हमको विवश हो करना भले ही पड़े, किन्तु ऐसे अवसरों पर एक

विडम्बना तो हमारे मानस-लोक पर समाच्छन्न बनी ही रहती है। अनेक आत्मीय स्वजन स्मरण आते हैं। उनके साथ-साथ वे क्षण, वातावरण के प्रकरण और पुलकसंचारी संस्मरण स्मरण आते हैं, जिनके साथ जीवन का सघन और दुर्लभ स्नेह-सम्बन्ध होता है।

कचहरी से लौटने पर नन्दनन्दन बाबू चाय के साथ कुछ नाश्ता करते थे। उस दिन नाश्ता करते-करते अकस्मात् उन्हें किसी बात का ध्यान आ गया।

किसी समय जाह्नवी ने कहा था—'माँ की विशेष इच्छा है; इसलिये जा रही हूँ। वैसे मैं यह भी सोचती हूँ कि ऐसे संकट के समय तुम मेरे सामने रहते। क्योंकि यदि ऐसा अवसर आ ही जाय कि आंखें सदा को बन्द होने लगें और प्राणप्रिय स्वामी पास बैठे भर हों तो मृत्यु की गोद स्वर्ग बन जाती है।'

नंदनंदन बाबू ने झट सूट पहना, होल्डआल कसवाया और सिर पर हैट धारण किया। वंशी (भृत्य) को ताँगा लाने के लिये भेजा। बकरीदी ताँगेवाला उसे संयोग से दिखलायी पड़ गया। वंशी उसे लेकर आ पहुँचा। फिर उसने बिस्तर तथा सूटकेस ताँगे पर रख दिया और नंदनंदन बाबू ने भगवन्त् नगर को प्रस्थान कर दिया।

ससुराल पहुँचने पर, खान-पान के बाद, जब सलहज ने हँसते-हँसते उन्हें पान देते हुए पूछा—"लल्ली ने बेतार के तार से कोई संदेश भेज दिया था क्या? सवेरे से ही कह रही थी—'कोई आया नहीं!' थोड़ी-थोड़ी पीड़ा तो कल सायंकाल से ही होने

लगी थी। पर आज जब आप इधर देहरी के भीतर पैर रख रहे थे, तभी चिरंजीव धरतीमैया की गोद में कूद रहे थे।"

जिस कमरे में ये बातें चल रही थीं, एक परदे भर के अन्तर से लगे हुए दूसरे कक्ष में पलंग पर पड़ी जाह्नवी हेम का श्रीमुख निहारती हुई ये बातें सुन रही थीं।

नंदनंदन बाबू ने उत्तर दिया—"कह नहीं सकता, क्या बात है। लोग प्रेम की बातें करते हैं। मैं प्रेम-वेम तो कुछ मानता नहीं। हाँ, एक बात जानता हूँ। वह है अपना-अपना मन। पर मैंने आज तक यह कभी नहीं जाना कि मेरा मन दूसरा है।"

रह-रहकर जाह्नवी को यही अवसर, उसकी यही बातें स्मरण आ रही थीं। निकटवर्ती उपनगरों में रहनेवाली कुछ छात्राएँ, दो-दो तीन-तीन एक साथ, सायं-प्रातः घड़ी-दो-घड़ी को, उसके यहाँ आ जाती थीं। दो-एक दिन पूर्व उन्होंने कहीं किसी वार्ता-प्रसंग में इतना जान लिया था कि जाह्नवी गुरु के चिरंजीव हेम की वर्षगांठ अमुक दिन पड़ेगी। बस यह संवाद उन्होंने अनेक सखियों में प्रसारित कर दिया था। इसका फल यह हुआ कि उनके उत्साही माता-पिता उपहार-सामग्री ले-लेकर आ पहुँचे। जाह्नवी का भाव-प्रवण हृदय पुलकित हो उठता था। कभी ध्यान आता—'काश वे जीवित होते', फिर झट से एक विचार रश्मि की भाँति अन्तर के कोण-कोण में पैठ जाता—'वे जीवित होते' तो मैं विद्यालय में नौकरी ही क्यों करती—ओः! तो कुछ सौभाग्य ऐसे भी होते हैं, जिनका उद्भव दुर्भाग्य के भीतर से होता है!—प्रभु, तुम्हारी यह कैसी

अद्‌भुत लीला है !

उषा अपने पिता के साथ आई थी । डलिया में हेम और क्षेम के लिए रेशमी खादी के सिले कपड़े, हेम के लिए पुस्तकें, क्षेम के लिये खिलौने, भाँति-भाँति की मिठाइयाँ और फल थे । कृतज्ञता स्वीकार में जाह्नवी ने कहा था—'धन्यवाद ऐसे प्रेमोपहार के सम्मुख कुछ नहीं है । मेरी कामना है—उषा बिटिया राजरानी सी सौभाग्यवती बने और कुछ ऐसा कार्य कर दिखाये, जो हमारी संस्कृति और महान् देश की ऐतिहासिक गौरव-वृद्धि में सहायक हो ।

सजलनयन हो उषा के बाबू कृतार्थ हो गये थे ।

फिर शकुन्तला अपनी माँ महालक्ष्मी के साथ आई थी । वे अवस्था में जाह्नवी से कुछ ज्येष्ठ थीं । शकुन्तला ने परिचय में कहा—गुरुमाँजी, मेरी ये भाभी भी एक सुप्रसिद्ध वकील की बेटी हैं और नाम इनका महालक्ष्मी है । नाम बतलाती हुई वह चपल कुमारी खिलखिलाकर हँस पड़ी थी और महालक्ष्मी अपने साथ फलों और मिठाइयों के अतिरिक्त हेम के लिए एक रोल्डगोल्ड सेंकडस कलाई घड़ी ले आई थी । जाह्नवी ने कृतज्ञता-ज्ञापन में कहा था—"दीदी, मैं आपका बड़ा उपकार मानती हूँ । आप जानती हैं, एक उपकार ही तो है, जो पीड़ित मानवता को प्राणमय बनाते रहते हैं । अन्यथा आज की दुनियाँ में कौन किसकी चिन्ता करता है ! भगवान करे, आपकी यह बिटिया रानी इंद्राणी बनकर । हमारे इस महान् देश और उसकी परमपावन पुरातन परम्परा को सदा गौरवान्वित करती रहे ।"

महालक्ष्मी ने उत्तर में कहा था—"आपका जैसा सुयश सुनती थी, वैसा ही मैंने आप को पाया। पर आज मैंने एक ऐसी बात सुनी है, जो बड़ी ही चिन्ताजनक है। क्या ऐसी कोई बात हो गई है, जिससे आपको हमारे विद्यालय से अलग होना पड़ रहा है ?"

जाह्नवी के मन में अनेक बार इस घटना की टीस उठती रही थी। पर अपनी यह मर्मव्यथा उसने किसी से प्रकट नहीं की। मनुष्य के लिए नियति की यह कैसी—विडम्बना कैसा अपरूप कुटिल परिहास है ! आनन्द-विनोद और मांगलिक बेला में ही मेरा पृथक्करण !

वह एक दम से अवाक् हो उठी। नयन सजल हो उठे। धोती से ही आँसू पोंछती हुई वह बोली—तो क्या हुआ ? हेम के बाबू नहीं रहे, फिर भी भगवान ने मुझे त्राण दिया है। नौकरी चली गयी, फिर भी आपके आशीर्वाद से ये बच्चे—उसने हेम और क्षेम के सिर पर हाथ रखकर उन्हें अपनी ओर समेटते हुए कह दिया—पनपेंगे, बढ़ेंगे और एक दिन पूर्ण समर्थ बनकर रहेंगे।—यदि हम अग्नि-परीक्षाओं को चीरते, उन्हें पार करते हुए, आगे बढ़ते हैं, तो इसका यही अभिप्राय तो है कि परमपिता परमात्मा हमें ही इसके लिये योग्य मानता है।

महालक्ष्मीदेवी की मर्मवाणी फूट निकली। बोली—वाह ! धन्य हो तुम जाह्नवी बहिन। तुम्हारी रसना में भगवती वीणापाणि की प्रेरणा और आत्मा के एकान्त कुटीर में मातेश्वरी दुर्गा की शक्ति है। पर इतना मैं कहे देती हूँ कि यह

विद्यालय चलेगा नहीं। ऐसी संस्थाओं का नाश निश्चित है, जब अधिकारीगण इतने मदान्ध हैं। हम सब मिलकर इसका विरोध करेंगी। आप चिन्ता न करें और हमारे योग्य जो भी सेवा हो, निस्संकोच प्रकट करें।

दिन भर ऐसे श्रद्धा-प्रसंगों का ताँता बँधा रहा।

अब सायंकाल हो रहा था। सहसा महरी ने आकर कहा—"परमेश्वरी बाबू आये हैं।"

"कौन परमेश्वरी बाबू ?" जाह्नवी ने पूछा।

"अरे वही जो देवनगर में रहते हैं।" महरी प्रसन्नता से पुलकित होकर बोली—वही जो किसी कालेज में पढ़ाते हैं।—जिनके दो बच्चे हेम के साथ ही तो—उसी के स्कूल में—पढ़ते हैं।

"लेकिन मैं—मुझसे—मुझको तो कुछ मालूम नहीं। क्या वे मुझे जानते हैं ? उनसे पूछो, किससे मिलना चाहते हैं ? जाह्नवी ने कुछ विस्मय, कुतूहल और अन्यमनस्कता से कह दिया।

"अरे।" एकाएक मुँह बाकर महरी कुछ अटकती हुई बोली—अ-आप उनको नहीं जानतीं ! पर वे तो आपको जानते हैं।

"होगा। जानते होंगे।" कुछ बेमन और वितृष्णा से जाह्नवी ने कहा—"उनसे पूछो, क्या काम है ? मुझे आज किसी से मिलने का बिल्कुल अवकाश नहीं।"

परमेश्वरीलाल ज़ीने में खड़े हुए सब कुछ सुन रहे थे। पैर कम्पित हो उठे। 'क्या मुझे वापस लौट जाना चाना

चाहिये ?'—क्या यह मेरी—अनधिकार चेष्टा है ?—क्या ऐसी कोई बात है कि मैं ग़लती कर रहा हूँ ?—फिर इस उपहार-सामग्री का क्या हो ?

एक बार जी में आया—"कुछ झुटपटा हो गया है। कुछ और पहले आना ठीक होता। लौट ही जाना ठीक होगा।"

'ऐसा कोई अपराध तो मैं कर नहीं रहा हूँ।' एक बार फिर भावना का ज्वार विस्फूर्जन करने लगा—'आखिर ऐसी बात क्या है ? बहुत होगा—इनकार कर देंगी। आकर फिर क्या लौटना !'

तब परमेश्वरीलाल जहाँ खड़े थे, वहीं, देहरी से बाहर, कपाटों की ओट से, एक बार थोड़ा खाँसते हुए-से बोल उठे—'जी, मैं आपका अधिक समय लेने नहीं आया। मैं तो चिरंजीव हेम की वर्षगाँठ के इस शुभ अवसर पर अपनी कुछ तुच्छ भेंट लेकर आया हूँ।'

उत्तर सुनकर जाह्नवी का विस्मय और भी बढ़ गया—'जिस व्यक्ति को मैंने कभी देखा नहीं, जिससे मैंने कभी बात नहीं की, जिसके साथ मेरे अपने और मामा के वंश का भी कोई नाता नहीं, वह व्यक्ति मेरे हेम के लिए उपहार लेकर आये, इसका कुछ अर्थ—निहित मन्तव्य, प्रच्छन्न अभिप्राय—तो होना चाहिये। पर इस अवस्था में इसे लौटाया भी कैसे जाय ?—और उत्तर भी क्या दिया जाय ?

फलतः आगे बढ़कर द्वार के निकट आ गई जाह्नवी। यों अंधेरा अभी अधिक नहीं हुआ था। फिर भी जाह्नवी ने

जीने की बत्ती जला दी। किवाड़ थोड़े ही खुले हुए थे। उन्हें पूरा खोल दिया। सहसा ध्यान आ गया। बस इतना ही कि इनको कहीं देखा तो है। पर स्मरण नहीं आ रहा, कहाँ ?

तब वह सकुचाती हुई बोली—"महाशय जी मैंने आपको कहीं···।" और संकोच कथन के क्षण जैसी वह शोभन मुद्रा परमेश्वरीलाल को बड़ी प्यारी लगी। तब वे–"जी, देखा है।" शब्दों के साथ आगे बढ़ते हुए तुरन्त बोल उठे—आपको कदाचित् स्मरण हो कि "हम लोग इलाहाबाद से एक साथ, एक ही डिब्बे में, बल्कि एक ही बर्थ पर आये थे। आपके पास असबाब कुछ...।"

"ओ: मुझे स्मरण हो आया। क्षमा कीजियेगा—दिन भी तो बहुत हो गये।"

मजदूर के सिर पर रक्खी हुई डलिया उतारते हुए परमेश्वरी ने कह दिया—"इसको जहाँ कहिये वहाँ रखवा दूँ।"

जाह्नवी बड़े संकोच में पड़ गई। बोली—"आपने तो बड़ा कष्ट किया। इसकी क्या आवश्यकता थी ? यों भी आज काफ़ी सामग्री आ गई है। मैं हैरान हूँ, मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि इतनी श्रद्धा, इतना आदर, आत्मीयता—और सामाजिक दृष्टिकोण से देखें, तो—सहयोग और व्यवहार मुझ से निभेगा कैसे ? मध्यवित्त की मैं एक साधारण नारी...। पर आप अन्दर बैठिये न ?" कथन के साथ वह परमेश्वरीलाल

को कमरे के अन्दर ले आई। उसमें दो साधारण कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं और एक छोटी-सी टेबुल तथा एक तिपाई।

परमेश्वरीलाल अब तक खड़े थे।

जाह्नवी पुनः बैठने का आग्रह करती हुई बोली—"बैठिये न ?" और इतना कहने के पश्चात् बिजली की बत्ती का बटन दबा दिया; क्योंकि अन्धकार उस कमरे में किंचित प्रविष्ट होने लगा था।

किन्तु परमेश्वरीलाल मजदूर को दो आने पैसे देते हुए बोले—"बस, अब तुम जाओ।"

पैसे ठीक होने की स्वीकृति में सिर हिलाता हुआ मज़दूर चला गया।

भेंट-सामग्री देखती हुई जाह्नवी का मन कुछ आन्दोलित हो रहा था। कुछ प्रश्न मन में उठ रहे थे, कुछ विवेक जाग-जागकर भड़क उठता था। एक ब्रीड़ा, एक सम्मान-प्राप्ति की प्रसन्नता, सदा सोचकर चलने की एक निष्ठा और फिर एक सभ्य नारी का शिष्टाचार।—क्या करूँ, क्या न करूँ,' सोचती हुई जाह्नवी बोली—"मुझे बड़ा संकोच हो रहा है।—कपड़े देखकर वह फलों पर दृष्टि डाल रही थी—आम और लीची, केले तथा पपीते।—मैं तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि ट्रेन की यात्रा के माध्यम से, आपको मेरा इतना ध्यान रहेगा।—खिलौने रबर और प्लास्टिक के रंगीन और लचीले—सब तरह से यह अप्रत्याशित और अकल्पित है। आज के जगत में ऐसा कहाँ होता है ? आपका यह आभार मैं कैसे स्वीकार करूँ ?" कहती-कहती जाह्नवी यह भी सोचने

लगी—'बिना किसी कामना के कोई व्यक्ति अपने आप किसी को कुछ भेंट करता है ?

पुलकित परमेश्वरीलाल अभिभूत हो उठे। बोले—"आभार की तो इसमें कोई विचारणीय बात भी नहीं है। और अगर कुछ है, तो वह बच्चों के लिए है। और आप जानती हैं—बच्चे सम्पूर्ण राष्ट्र की भावी आशा के प्रतीक—उसकी एक अक्षय निधि होते हैं। बच्चे जियें, जागें, समर्थ्य बनें, समाज और देश का गौरव बढ़ायें। इसी भावना से, एक पावन शुभ-कामना के साथ, मेरी यह तुच्छ भेंट आपके सामने है।"

जाह्नवी ने अनुभव किया, आगन्तुक एक सभ्य, सम्भ्रान्त नागरिक है। तब उसने कह दिया—"मैं इसके लिए आपकी बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ।"

क्षेम डलिया में रखे हुए सामान को देखकर पुलकित हो रहा था। एक खिलौना उसने उठा कर जो दबाया तो वह बोला—"चूँ।"

रेशमी खादी का कपड़ा उठाते हुए हेम बोला—"अम्मा, इसकी बुश-शर्ट अच्छी रहेगी। रहेगी न ?"

क्षेम ने बिस्किट रंग का मिल-मेड चिकना रेशमी कपड़ा उठाते हुए कह दिया—"ये अमाला ऐ। अम्मा, देथोदेथो-अम्मा, तैछा छुंदल ऐ।"

जाह्नवी आम और लीची कई बार ले आ चुकी थी। अतः उनकी ओर बच्चों का विशेष ध्यान नहीं गया।

परमेश्वरीलाल ने दोनों बच्चों को क्रम-क्रम से अपने वक्ष से लगाया। उनके सिरों पर हाथ फेरा, पीठ थपथपाई;

हथेलियों की चुम्मी ली और कहा—"भगवान करे युग-युग जियें और सदा सुखी रहें ।"

हेम इसी समय बोल उठा—'अम्मा, हमने इनको पहचान लिया । ये मामा जी हैं । रेल के डब्बे में इनसे भेंट हुई थी ।" और उसने परमेश्वरीलाल की ओर उन्मुख होकर पूछा—"हुई थी न ?"

परमेश्वरीलाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"हुई थी । तुमने हमारी ओर पैर पसार लिये थे, तब तुम्हें इसके लिए बहन जी ने मना किया था । याद आ गया ?"

हेम मुस्कराने लगा, फिर उसने कह दिया—"इस पर आपने भी तो कुछ कहा था । कहा था—कोई हर्ज नहीं, बच्चा है ।"

परमेश्वरीलाल ने अनुभव किया—'हेम की स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र है ।' बोले—"तुमको अब तक याद बना है ।" और प्रसन्नता से पुलकित हो उठे । साथ ही उन्हें महेश का ध्यान हो आया ।—'काश यह बात मेरे महेश में होती ।'

जाह्नवी ने कहा—"आपकी सज्जनता का थोड़ा-सा परिचय तो उसी अवसर पर मिल गया था । पर मैं यह कभी न सोचती थी कि वह भेंट भविष्य के लिए अपनी एक सम्बन्धित शृंखला भी बना लेने का कारण बन जायगी । एक सज्जनता ही तो है, जो मनुष्य को देवोपम बना देती है ।"

फिर उसे कुछ ध्यान आ गया । महरी अब तक दासी-कर्म में लगी हुई थी ।—"बस एक मिनट" कहकर जाह्नवी उसके

पास जाकर धीरे से बोली—"इस काम को फिर कर लेना। इस समय बाज़ार से एक हुंडा लस्सी तो बनवा ले आओ।"

कथन के साथ उसने एक अठन्नी उसे दे दी। फिर इतना और कह दिया—'और देखो, दो बीड़े पान भी ले लेना, इलायची अलग से। मगर जल्दी। मेहमान बैठे हैं।"

परमेश्वरीलाल के कान में भी यह स्वर पहुँच गया—'मेहमान बैठे हैं।'

महरी बोली—"अभी ले आती हूँ, दीदी।" फिर वह साबुन से हाथ साफ़ करके चल दी।

जिस कमरे में परमेश्वरीलाल बैठे थे, उससे लगे हुए छज्जे में, लकड़ी के गोल खम्भे, लोहे की जाली के साथ छत से जुड़े हुए थे। उनमें से एक पर, रोशनी निकट होने के कारण, थोड़े अन्तर से, दो छिपकलियाँ, शिकार की घात में, खम्भे से चिपकी हुईं, कभी-कभी अत्यन्त मन्द गति से, पैर बढ़ाती हुईं ऊपर पटिया की ओर बढ़ रहीं थीं।

जाह्नवी इस दृश्य को देखकर भीतर-ही-भीतर इतनी कम्पित हो उठी कि रोमांच हो आया। फिर तुरन्त ध्यान आ गया—'नौकरी भी छूटी, तो ऐसे समय।'

एक अगम उदासीनता उसके मुख पर व्याप्त हो गई।

इतने में परमेश्वरीलाल बोले—"मैंने एक बात और सुनी है। अगर वह सत्य है, तो सचमुच बड़े दुःख और परिताप का विषय है।"

जाह्नवी के भीतर एक भयानक प्रश्न था—"अब ?"

पर सहसा तुरन्त वज्र कठोर बनकर उसने उत्तर

दिया—"अब मेरे लिए दुःख और परिताप की कोई बात नहीं हो सकती। संघर्ष को मैं दुःख की बात मानती भी नहीं। हर एक दुःख की घड़ी भावी सुख की पृष्ठ-भूमि होती है। यद्यपि व्यक्तिगत सुख की मुझे कोई लालसा नहीं। एक बात और है—दुःख और आपत्ति के समय मैं सृष्टि के इस नियम को कभी नहीं भूलती कि शान्ति और सौख्य के अलस जीवन में जब कभी बाधा पड़ती है, तभी भगवान किसी महान् उत्तरदायित्व को सौंपने के लिए हमारी परीक्षा लेता है। और जब परम-पिता ही हमारा परीक्षक हो, तो फिर भय-कातर होने की क्या आवश्यकता है?"

परमेश्वरीबाबू अब तक जाह्नवी के सम्बन्ध में ऐसे उच्च और सुदृढ़ चरित्र—ऐसे उदात्त विचार और उत्कर्ष—की कल्पना भी न कर सके थे। उससे वार्तालाप करके, वे एकदम से श्रद्धा-विनत हो, जाह्नवी की ओर इकटक देखते रह गये।

इतने में महरी लस्सी लेकर आ पहुँची। जाह्नवी ने लस्सी के हुंडे को टेबिल पर रख दिया और उसके बाद कागज़ में लिपटे हुए पान।

'एक आतिथ्य सहृदयता और आत्मीयता को व्यक्त करता है, दूसरा आकस्मिक रूप से आ पहुँचे शिष्ट कर्त्तव्य-निर्वाह को।' सोचते-सोचते परमेश्वरीलाल बोले—"इस कष्ट की क्या आवश्यकता थी?" जाह्नवी मुसकराने लगी। बोली—"मत्स्य-न्याय की दृष्टि से आपने जो बहुत बड़ा कष्ट किया है, उसने मेरे इस छोटे से कष्ट को आत्मसात कर लिया है।"

परमेश्वरीलाल जाह्नवी के इस उत्तर से और भी पराभूत

हो उठे। सोचने लगे—'यह तो मुझ से भी अधिक सुसंस्कृत है। इसको तुलना में मेरी समस्त शिक्षा-दीक्षा, प्रतिभा और वाक्पटुता, व्यक्तित्व की गरिमा तक नगण्य बन जाती है।

तब उन्होंने कह दिया—"आपसे मिलकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, कह नहीं सकता।"

जाह्नवी जानती थी, कोई पुरुष सम्मुख बैठी हुई नारी की प्रशंसा क्यों करता है। अतः वह बोली—"बड़ी कृपा हो, यदि आप अब लस्सी पी लें। क्योंकि इस समय मैं थोड़ी देर के लिए इस संसार से विलग होकर भगवान के निकट पहुँचने की चेष्टा करती हूँ।"

परमेश्वरीलाल की सारी भावनाएँ एक बार कम्पित हो उठीं। वे संकुचित हो उठे और बोले—"सचमुच मैंने आपका बहुत समय ले लिया।"

उसी समय क्षेम दौड़ता हुआ आया और जाह्नवी के पैरों से लिपटकर दीवार से लगो अलमारी के कोने की ओर अपनी नन्ही-सी तर्जनी से संकेत करता हुआ बोला—"अम्मा-अम्मा, तुइया।"

जाह्नवी उसकी पोठ पर हाथ रख हँस पड़ी। क्षेम भय-कम्पित होकर अपना मुँह उसकी साड़ी में छिपाता हुआ और भी अधिक दृढ़ता से छिपने की चेष्टा करने लगा।

हँसती-हँसती जाह्नवी क्षेम को गोद में लेकर बोली—"चुहिया से इस तरह डरा नहीं करते। वह तो खुद ही तुम्हें देखकर डर जायगी।"

क्षेम जाह्नवी की गोद में पहुँचकर एकदम निर्भय होकर,

बिस्किट के टुकड़े को दोनों हाथों में लिए, अपने नन्हें दाँतों से कुतरती हुई चुहिया की ओर उँगली दिखाता हुआ बोला—"तुइया बिच्छकित थाती ऐ।"

परमेश्वरीलाल को अपने सुरेश, महेश और सरोज की भी बाल-क्रीड़ाएँ स्मरण आने लगीं। जाह्नवी के अनुरोध के विचार से वे झटपट लस्सी समाप्त कर, रूमाल से मुँह पोंछते हुए, खड़े होकर बोले—"अच्छा, अब चलूँगा।"

जाह्नवी ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"क्षमा कीजियेगा, आज मैं आपके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी बात नहीं कर सकी।"

परमेश्वरीलाल ने अवसर पाकर कह दिया—"मैं किसी दिन फिर आऊँगा। थोड़े से सम्पर्क में ही मुझे ऐसा कुछ मिल गया है, जो मेरे लिये चिर-स्मरणीय रहेगा।"

सावधान जाह्नवी बोल उठी—"आप तो मुझे लज्जित कर रहे हैं!"

भावाविष्ट परमेश्वरीलाल फिर ठिठक गये। जाह्नवी की पलकों पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने कह दिया—"अपने को व्यक्त करने में मैंने सदा मौन का सहारा लिया है। लेकिन·····।"

सहसा स्तब्ध जाह्नवी अवाक् हो उठी। कम्पित हृदय से हाथ जोड़ती हुई बोली—"नमस्कार।"

परमेश्वरीलाल जब चलने लगे, तो हेम उनके पीछे लग गया।

परमेश्वरीलाल जीने की सीढ़ी उतरते हुए सोच रहे

थे—'इन बच्चों तक में कितनी सभ्यता है !'

फिर वह पीछे मुड़ कर बोले—"तुम बैठो बेटा।"

हेम ने उत्तर दिया—"चलिये, चलिये न मामाजी।"

परमेश्वरी बाबू विचार में पड़ गये।

'समुद्र में बीसों प्रकार के नाना जीव-जन्तु हैं, बड़े-बड़े शंखों और छोटी-छोटी शंखियों में रहने वाले उनके रूप कितने विचित्र, वीभत्स और भयानक। जानवरों की हड्डियाँ, घोंघे, डूबकर मरनेवाले प्राणियों के अस्थिपंजर। व्यापक इतना कि उसमें पदार्थों की सारी जड़ता, कठोरता समा जाती है। अगणित सरिताएँ वह अपने में भर लेता है। बादलों का गर्जन-तर्जन, बिजलियों की चकाचौंध, नावों, स्टीमरों और जहाज़ों की दौड़, आँधियाँ, दिवस की धूप, उष्मा का उत्ताप, वर्षा का घनघोर भीषण उत्पात और अमानिशाओं की काली-काली भयानक विद्युतीय हँसी—फिर पूर्णिमा की सहस्त सहस्त रजत किरणों का नर्तन, चुम्बन, आलिंगन। उसके लिये सभी एकरस—सभी निर्विकार।

—ओः तो ऐसी ही यह जाह्नवी है।'

—:o:—

७

कई दिनों से घनघोर वर्षा हो रही थी। रात दिन आकाश में बादल छाए रहते थे। दिन में न सूर्यदेव के दर्शन होते, न रात में चन्द्रदेव के। नगर में गाँव से ही अधिक दूध आता था। पर अब उसका नगर तक आना दुष्कर हो गया था। साइकिल से आने के मार्ग बन्द हो चुके थे। केवल उन्हीं गाँवों का दूध आ पाता था, जो रेलवे लाइन के निकट पड़ते थे।

यही दशा साग-भाजी की थी। नगर की सड़कें अवश्य धुली और सद्यःस्नाता प्रतीत होतीं। किन्तु गलियों से निकलना दुष्कर हो गया था। हास्य-विनोद में आकर मनचले तरुण उन की उपमा रजस्वला से देने लगे थे। दफ्तरों के बाबू दोनों हाथों से पैंट या पाजामा उठाये, कोई पैदल, कोई साइकिल हाथ में लिये दृष्टिगत होते, भले घरों की नारियाँ तो घरों से बाहर निकल ही न पाती थीं। जब कभी वर्षा के साथ में पवन का वेग बढ़ जाता, तब छाते काम न देते, इधर-उधर बहकने और भागने लगते। मलमली कुर्तों से देह की कलई खुल जाती। वायु के शीतल झकोरों से कंपकंपी उत्पन्न हो जाती।

किसी तरह जो कार्यालयों में पहुँचते भी, तो सभ्यता उन्हें काटने लगती।—'अब अपने कमरों में उन बाबुओं के समक्ष बैठा कैसे जाय, जिनके पास मूल्यवान रेनकोट हैं? जिन कार्यालयों में ऐसे कर्मचारियों की संख्या सैकड़ों पर थी, उनके अनेक बाबुओं ने अपने मालिकों या उच्च-अधिकारियों की सेवा में वेतन में से तीस-तीस चालिस-चालिस रुपये पेशगी प्राप्त करने के हेतु आवेदन-पत्र भेजने प्रारम्भ कर दिये।

घरों की स्थिति यह थी कि जिन्होंने ज्येष्ठ मास में सूखी लकड़ी आवश्यकतानुसार यथेष्ठ मात्रा में नहीं ले पायी थी, उनकी गृह-देवियाँ चूल्हा जलाते समस आंसू पोंछते हुए अपने भाग्य को कोसने लगतीं। पत्थर के कोयले पर राशनिंग थी और लकड़ी के कोयले का भाव बहुत बढ़ गया था। यद्यपि बढ़े हुए दामों पर भी सूखा कोयला मुश्किल से मिलता था। फिर मकान जो गिरने लगे, तो तन-मन की दुर्बल वृद्धाएँ इस आशंका से आतंकित रहने लगीं कि न जाने क्या होनहार है! कहीं ऐसा न हो कि रात में किसी समय तिमंज़िला मकान धराशायी हो जाय और हम लोग सदा के लिए सोते-के-सोते ही रह जायँ। जिन संकुचित गलियों के मकान गिर गये थे, वे मलबा ढुल न सकने के कारण बन्द हो गई थीं।

नगर के स्वास्थ्य की यह दशा थी कि मलेरिया, नमोनियाँ और टाईफाइड के रोगियों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जाती थी। जीवन से निराश राज्यक्षमा के रोगी पीले पड़े हुए मुख, गढ्ढों में धँसी विस्फारित आँखें, अस्थिपंजरवत्देह, बाँस की खपच्चियों जैसे हाथ और बीच की गांठ सहित डंडे

से पैर लिए देखते-देखते, बात करते-करते, दस-दस, बारह-बारह, मिनट के अन्दर समाप्त होने लगे थे। कभोजो बरसते हुए पानी में सड़कों से मृतकों के विमान निकलते, तो दुर्बल तन और कातर मनवाले नर-नारी राम के साथ सत्य का निर्घोष सुनकर अमांगलिक आशंकाओं से थर-थरा उठते। खुले तौर पर शराब यों भी दुर्लभ थी, पर अब तो उन लोगों को और भी दुष्प्राप्य हो उठी, जो नित्य लुक-छिपकर दो-एक पेग चढ़ा लेने के अभ्यासी थे। कुछ ऐसे भी मनचले लोग थे, जिन्हें ऐसे ही समय खुलकर सौख्य-लाभ करने की प्रेरणा मिलती है। ऐसे समय उनके दलाल और निकटवर्ती अभिन्न लोग यत्र-तत्र दौड़ने लगे। सरसैयाघाट के मंदिरों तथा पडों के आसनों पर घंटों जमनेवाले गंगा-स्नानार्थियों की संख्या बहुत कम हो गई थी।

इतना सब कुछ होते हुए भी जीवन की सर्वग्राही और सर्वव्यापक रचना का क्रम पूर्ववत स्थिर था और भवानी बाबू का आत्म-निरीक्षण बन्द नहीं हुआ था।

सूर्योदय हुए केवल घंटा भर हुआ होगा। कई दिनों के बाद बादल हट गये थे। भवानी बाबू कमरे में बैठे-बैठे खुले आकाश को देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। अतीत के दिन उन्हें स्वप्न से लगते थे।

उस दिन राधेगोविन्द का स्मरण करते हुए उन्होंने माया से कहा था—"अब तो घुटनों के बल चलने लगी होगी, सत्यवती। क्यों माया रानी ?"

माया को जब वे 'रानी' शब्द की शर्करा में डुबोकर

सम्बोधन करते, तब उसको यह समझते देख लगती थी कि ये मुझे बना रहे हैं।

प्रश्न सुनकर उसने कहा—"तो ललचा क्यों रहे हो? अब तक तो उसके मुँह में नन्हे-नन्हे दाँत भी निकल आए होंगे; राधेगोबिंद दौड़ने लगा होगा। नाना न सही, नानी उस की अँगुली पकड़े पास-पड़ौस के घरों में चक्कर लगाती होंगी गोकुल भैया उसे अपने साथ बैठाकर खाना खिलाते होंगे। भाभी कुढ़-कुढ़कर रह जाती होगी। मेरा क्या, मैं यो सौत ठहरी, पर तुमको तो एक बार देख आना चाहिए था। दीदी को छोड़ दिया है, लेकिन बच्चे कहीं छोड़े जा सकते हैं।"

मां बरामदे में बैठी-बैठी झाड़ू लगाती हुई, नयी बहू की इन बातों को सुन-सुनकर मन-ही-मन कुड़कुड़ा रही थी—'सत्यवती रांड को तो मैं लेने से रही। हां, राधेगोविंद को अलबत्ता किसी तरकीब से ले आना पड़ेगा।

भवानी बाबू ने उत्तर दिया—"अच्छी बात है। कपड़े धुलकर आ जायँ, तो मैं दो-चार दिन के लिये वहाँ हो आऊँ।"

माँ से न रहा गया। कमरे के अन्दर जा पहुंची। माया ने नयनों के नीचे तक अवगुण्ठन खींच लिया।

अब इस वृद्धावस्था में भी भवानी बाबू को माया का वह प्रसन्न, पुलकित मुखारबिन्द स्मरण आ रहा था।

जो वासना अन्याय और पाप को जन्म देती है उसका सौख्य अन्त में बड़ा ही दारुण और करुण रूप प्रकट करता है।

ससुराल में इसी बात को लेकर विग्रह हो उठा था। सास ने कहा था—"मैं अब राधेगोविंद को किसी प्रकार न दूँगी। मुझे इस बात की ज़रा भी चिंता नहीं कि तुम यहाँ नहीं आओगे, तो एकादशी का जीवन बरबाद हो जायगा।"

और एकादशी ने उत्तर दिया था—"मेरे जीते जी तो यह बच्चे तुम्हारे साथ जाने से रहे। मेरे मर जाने पर चाहे जो हो।"

सोचते-सोचते भवानी बाबू हँस पड़े—एकादशी ने जो बात कही थी, अन्त में वह सिद्ध होकर रही। गोकुल भैया के लड़का हुआ—और दो वर्ष के भीतर ही लड़की। तब भाभी ने एकादशी के साथ—राधेगोविंद और सत्यवती को लेकर—विग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। दूध दुधाँड़ी में रखा रहता और भाभी कह देतीं—'दूध-ऊध अब नहीं रह गया।'

एकादशी ऐसी बातें सुनकर विचलित हो उठती। भाभी का यह दुर्व्यवहार जब उससे नहीं सहा गया, तब उसने अपनी मां को इसका उलाहना दिया। अब घर में राज्य भाभी का था। वह स्वयं तो कोई काम न करतीं। पर बिना किसी संकोच के बोल उठतीं—'मेरी तबियत ठीक नहीं है। बर्तन-बर्तन मुझ से मले न जायँगे।'

'जाड़े के दिन थे। पानी में हाथ डालते हुए ठिठुरन बढ़ जाती थी। सारा शरीर एक बार कंटकित हो उठता था।

एक निःश्वास लेते हुए भवानी बाबू सोचने लगे—'लेकिन ये दिन भी एकादशी ने सहन किये थे।'

'माँ ने उत्तर दिया—"तो मैं क्या करूँ? मुझ से काम

होता नहीं। अगर तुम नहीं करोगी तो करेगा कौन? सुना नहीं दुलहिन कह रही थी—'तबियत ठीक नहीं?'

लेकिन होता यह कि जब सारा काम समाप्त हो जाता, तब दस ही पाँच मिनट के अन्दर भाभी की तबीयत ठीक हो जाती। खाना बनते ही एकादशी की माँ कह देतीं—"बैठी क्या हो? जाओ दुलहिन के पास, कहो जाके—आलू-मेथी का साग बना है। एक-आध फुलका खाले आकर।"

तब तक भाभी की तबियत इतनी चंगी हो उठती थी कि वे इतमीनान से धूप में बैठकर गर्म पानी से नहा-धोकर अपनी बिटिया को गोद में दबाये पोढ़ा डालकर चौके के पास भोजन के लिए पूर्ण तत्पर हो जाती थीं।

होते-करते ऐसे भी दिन आये, जब राधे-गोविन्द को जौ की सूखी रोटी नमक के टुर्रों के साथ खानी पड़ती थी और गोकुल भैय्या की लड़ैती बिटिया के लिये बाज़ार से जलेबियाँ आ जातीं, जो गरम दूध में गला कर, राधेगोविन्द को दिखा-दिखाकर गोकुल भाई के बच्चों को खिलायी जातीं।

एकादशी ने यह सब भी सहन किया था।

सोचते हुए भवानी बाबू एकाएक उठ बैठे। बोले—"अरे बिस्सू की माँ, प्रेम से कहो एक बार ससुराल तो हो आये।"

यह प्रेम माया का सौभाग्य-दीपक था। जिस दिन भवानी बाबू ने सुना कि एकादशी का स्वर्गवास हो गया, उसी दिन वह सुसराल जा पहुँचे थे। पड़ौस में एक बढ़ई-मिस्त्री रहता था। एकादशी कभी-कभी उसके घर जाती रहती थी। ननद के नाते से वह उसकी स्त्री के पास बैठकर अपना मानसिक

उद्वेलन आँसू भरे नयनों से प्रकट कर आती थी। उसकी सारी व्यथाकथा उनको उसी से मालूम हुई थी। वे फूट-फूटकर रोये थे। संस्कार उन्हीं ने किया था। तभी वे पड़ौस के दो-चार व्यक्तियों के सामने गरजकर बोले थे—"जिन्होंने एकादशी की हत्या की है, वे अपने इस पाप का फल इसी जीवन में भोग कर मरेंगे!"

उन्होंने अपनी सास से भी स्पष्ट शब्दों में कहा था—'तुम हत्यारिणी हो। तुम्हारा मुख देखना भी पाप है। मैं अपने बच्चों को अब तुम्हारे यहाँ किसी तरह नहीं छोड़ सकता।' पड़ोसियों ने स्पष्ट कह दिया—'यह तो आपका अधिकार है। हम लोगों को तो इसी बात का दुःख है जो आपने उन्हें यहाँ इतने दिन रहने दिया। और वे उसी दिन शान्ति-संस्कार के पश्चात सूर्योदय से पहले राधेगोविन्द और सत्यवती को अपने संग ले आये थे। सौभाग्य की बात कि उसी दिन घर पहुँचते-पहुँचते इस प्रेम का जन्म हुआ था।

बिस्सू की माँ बोली—"अभी आषाढ़ में ही तो उसका विवाह हुआ है। इतनी जल्दी उसको सुसराल भेजने की क्या जरूरत है।"

भीतर से उठते दारुण दुःखावेग को दबाये भवानी बाबू ने कह दिया—"जरूरत है, बिस्सू की माँ। तुम कुछ नहीं जानतीं। भेजो, भेजो उसको।"

प्रेम सोकर उठा ही था। बिस्सू की माँ ने कहा—"जाओ

जाओ, अभी जाओ।"

प्रेम बोला—"कहाँ अम्मा ?"

"ससुराल और कहाँ ?"

"अभी, इतनी जल्दी !"

"हाँ, शौच वहीं जाना।"

"मुझसे ऐसी बातें मत किया करो अम्मा ! शिकायत सुनने और सहने के पात्र बाबू हैं; मैं नहीं हूँ।"

"तो मुझसे क्यों बिगड़ता है ? अपने बाप से क्यों नहीं कहता ? वही तो अभी कह रहे थे।"

"कौन, बाबू कह रहे थे ?"

"हाँ, पोते का मुख जल्दी-से-जल्दी देखने की एक हौंस भी तो होती है।"

"मरी ऐसी हौंस ! मुझे पहले अपनी शिक्षा की ओर देखना और भविष्य का नव-निर्माण करना है।"

"मुझे मालूम है। कलक्टर की कुर्सी खाली जो है !"

"लो, तुम फिर मुझे व्यंग-बाणों से विद्ध करने लगीं। कम से कम इतना तो सोचा करो कि तुम मेरी माँ हो। दुनिया के लिए सौतेली, लेकिन मेरे लिये सगी। मेरी स्त्री ही तुम्हारी दासी बन सकेगी और कोई नहीं। आने दो उसको, जिस दिन रात को सोते समय उसने तुम्हारे पैर न दाबे, बस उसकी कुशल न समझो। इतना मारूँगा कि चमड़ी उधेलकर रख दूँगा।"

दुर्गा हँस पड़ी। पान-भरे अरुण अधरों के भीतर कत्थई दाँत झलक उठे। बोली—"चल-चल, बहुत बातें मारता है।

सब देख लूँगी।"

"उसको तो तुम बाद में देखोगी, मुझको आज ही देख लो।" प्रेम भावुकता में आकर बोला—कल शाम को ट्यूशन का रुपया मिला था। जीवन की पहली कमाई का शुभारम्भ।" और इस कथन के साथ उसने झट उठकर अपना रेशमी खादी का कुर्ता टटोला, दस-दस के पाँच नोट निकालकर उसके चरणों पर रख दिये और साथ ही पद-रज मस्तक से लगा ली। बोला—"बस, अब हृदय की गांठ खोलकर, मुझे ऐसा आशीर्वाद दो कि विश्व-विद्यालय में पहला नम्बर मिलकर रहे।"

दुर्गा को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह स्वप्न देख रही हो। बोली—"हजार वर्ष जियो बेटा प्रेम! भगवान करे तुम्हारी सारी मनोकामनाएँ पूरी हों।"

आंखों में आनन्दाश्रु छल-छला उठे। बोली—"कोई नहीं जानता कि किस के भाग्य का लिखा हुआ फल किसकी गोद में जा गिरता है!"

विकार सबके मन में होते हैं। पर उनके शमन, मांगलीकरण और निवारण की युक्ति और बुद्धि सबके पास नहीं होती।

प्रेम हर्ष-गद्‌गद् होकर पुलक भाव से नाचने लगा।

इतने में राधेगोविन्द की दुलहिन ने चाय की ट्रे उसके सामने रख दी। प्रेम ने आगे बढ़कर झट से बड़ी भाभी के पैर छू लिये। सत्यवती ने गरमागरम बड़ियाँ तश्तरी में लाकर सामने रख दीं। वनलता अपनी चोटी की उमेठन ठीक करती

हुई आ पहुँची और बोली—"भैया, रात मैंने एक सपना देखा। देखा कि मैंने राखी जो तुम्हारी कलाई में बांधी, तो तुमने मुझे सौ रुपयेवाला एक नीला-नीला सा नोट निकाल कर मुझे दे दिया।"

प्रेम हँसने लगा और बनलता बोली—"लो, तुम हँस रहे हो; मगर तुमने यह नहीं पूछा कि ऐसा अवसर कैसे आया। सुनो, बात यह हुई कि पी० सी० एस्० में तुम्हारा हो गया चुनाव और डिप्टी साहब जो तुम बन गये तो रुपया तुम्हारे पास खूब आने लगा।"

प्रेम ने कहा—"अच्छी बात है, तो फिर तै रहा। मेरा चुनाव हो जाय, तो राखी बँधवाई के सौ रुपये पक्के।"

इसी समय एक गुरु-गम्भीर स्वर आँगन में गूँज उठा—'अरे कुछ सुनती हो?"

इस स्वर के साथ राधेगोविन्द और सत्यवती—एकादशी से; बनलता, कुमुदिनी, रेखा, यमुना, कुलवन्ती और मनोहर—माया से;—त्रिलोकी, दिनेश, लावण्य और हरिद्रा—अनसुइया से; अन्तिम छोटा भैया विश्वनाथ—इस दुर्गा माँ से; सब-के-सब जहाँ कहीं भी थे हँसने और मुसकराने लगे। राधेगोविन्द खिलखिला उठा और कुछ संकुचित होकर दुर्गा उठकर स्वामी के पास चल दी।

"असल बात यह है चाचा जी" प्रेम लहराते केशों को सिर के ऊपर समेटता हुआ कह रहा था कि मैं बाबू के आग्रह

से ही आया हूं। वैसे सच्ची बात यह है कि मेरा सारा ध्यान अभी अध्ययन में केन्द्रीभूत है। आप जानते हैं कि अवसर बार-बार नहीं मिलते। आपने कदाचित् पढ़ा हो कि सेंट बरनार्ड की घाटी का अवलोकन-पर्य्यवेक्षण करके वापस आते हुए इंजीनियरों से जब महान् नेपोलियन ने प्रश्न किया—'क्या इस पथ को पार करना सम्भव है' ?

'इंजीनियर्स कुछ झिझके। शंकित मन से उन्होंने उत्तर दिया—"जी, हो सकता है, हम पार कर लें।"

'इस पर समक्ष उपस्थित होनेवाली दुर्विचार अड़चनों, बाधाओं और अकल्पित दुर्लंध्य समस्याओं की कल्पना किये बिना उस परम सत्साहसी मेधावी महान् आत्मा के श्रीमुख से निकल गया था—"सिपाहियो, आगे बढ़ो।"

'इंगलैंड और आस्ट्रिया-निवासी इस गिठे तरुण की बातें सुन-सुन कर परिहास के प्रकार में हँस दिया करते थे। वस्तुस्थिति के अनुसार उनका कथन था कि साठ सहस्र सैनिकों, शत-शत मन युद्धास्त्रों के साथ आल्प्स जैसे विराट् दुर्गम पर्वतीय पथ को कैसे पार कर सकती है !

'आप जानते हैं, उन्हीं घड़ियों में उसका सखा मासेना शत्रु दल से घिरा हुआ भूखों मर रहा था। विजयी आस्ट्रियन नील के प्रमुख द्वार पर भयंकर आक्रमण कर रहे थे। क्या ऐसे अवसर पर महान् नेपोलियन अपने साथियों की पावन आशा के साथ विश्वासघात कर सकता था ?

'फिर चाचा जी, जब नेपोलिन ने असम्भव समझी जाने वाली बात सम्भव करके दिखा दी, तब वही टुच्चे, कमीने, घोर

सांसारिक और मायावी लोग बोल उठे—"वाह ! इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात हैं ? संयोग से ऐसा हो गया ।"

"आपने देखा, यही इस दुनियाँ की नग्न कुटिल वंचना है ? उसने विश्ववंद्य विजयी योद्धा को कोई श्रेय देना स्वीकार नहीं किया और उसने यह भी स्पष्ट नहीं कहा कि सफलता तो उसे मिलती है जो एक अदम्य साहस के साथ अवसर पर जूझता और कौशल से कठिनाइयाँ पार करता है ।·····विवाह तो मेरा हो गया चाचा जी, पर मेरा हृदय जानता है कि उसका कोई स्वप्निल उपयोग मेरे लिये तब तक सम्भव नहीं, जब तक नैपोलियन की भाँति मैं आल्प्स को पार करने की पर्वतीय परीक्षा में उत्तीर्ण न हो जाऊँ ।—है कि नहीं ?"

दामाद की बातें सुनकर परमेश्वरीलाल स्तम्भित हो उठे, फिर मुसकराते हुए बोले—"ठीक है ठीक है । मैं तुम्हारी इस भावना का आदर करता हूं । फिर भी बेटा, सब तरह से, यह अच्छा हुआ कि तुम आ गये । और कहो, तुम्हारे बाबू की कैसी तबीयत है ?"

"तबियत वैसे ठीक है । वर्षा अधिक होने से पैरों के जोड़ों और पिंडलियों में थोड़ी पीड़ा होने लगी थीं । पर अब वह भी शान्त हो गई है ।" प्रेम उत्तर के साथ सोच रहा था—'सरोज ने मुझे बहुत ग़लत समझ लिया था । कितना अच्छा हुआ कि बाबू ने मुझे दो दिन के लिये—ठेलठालकर—भेज दिया ।'

"चलो, भगवान की बड़ी कृपा है । मुझे उनके स्वास्थ्य की बड़ी चिन्ता रहती है । आदमी क्या है, हीरा हैं । मैं जब

उनका समधौरा करने लगा था—तब मेरी छाती से लिपटते हुए आनन्द के आँसू उनकी आँखों में छलछला उठे थे। फिर तो उन्होंने मेरे इस घर के आँगन में प्रजाजनों पर दान-दक्षिण्य-पूर्ण उत्साह का वह रूप दिखलाया कि हमारे सभी आत्मीय स्वजन पुलकित हो उठे थे।·····स्नान कर लिया कि नहीं ? ·····कर लिया ? चलो, ठीक है। उबटन लगवाया था ? नाई को बुलवाया तो था मैंने सुरेश से ?"

प्रेम हँस पड़ा। बोला—"चाचा जी, आप मुझे अपना वैसा ही बच्चा समझिये, जैसे महेश तथा सुरेश भाई हैं। मैं अपने साथ कोई विशेषता नहीं चाहता। फिर अभी आप मेरी प्रकृति से परिचित नहीं। कभी कोई इच्छा मैं छिपा तो सकता नहीं हूं। लोग माता-पिता तक से संकोच करते हैं। पर मैं किसी से संकोच कभी कर ही नहीं सकता।·····आप जानते हैं, संकोच शिष्टाचार का अंग है और शिष्टाचार में आत्मीयता नहीं, प्रदर्शन-परितृप्णा प्रच्छन्न रहती है। आप मेरे लिये कभी कोई ऐसी क्लिष्ट कल्पना भी न कीजियेगा, जिसमें आपको कभी बाद में सोचना पड़ जाय।—है कि नहीं ?"

परमेश्वरीलाल ने लक्ष्य किया—'प्रेम है कि नहीं' कहते क्षण बड़ा प्यारा लगता है।

"अच्छा तो अब" प्रेम फिर कुछ अटकता हुआ कहने लगा—"मुझे आप आज ही जाने की अनुमति·····अ मेरा अभिप्राय यह कि बाबू का अनुरोध तो जैसे पूरा हो ही गया। अब····· ?"

"नहीं-नहीं, ऐसी क्या बात है ! आये हो, तो रहो दस

पाँच दिन। अभी तो मैं बाजार भी नहीं जा पाया हूँ।" परमेश्वरीलाल बोले—"और यह भी मैं सोचता हूं कि ऐसे समय महेश को भी यहाँ उपस्थित होना चाहिये था। पत्र तो मैंने खिखवा दिया है। सोचता हूं, आज एक तार भी कर दूँ। तुमको परिवार का सम्पूर्ण सुख मिलना चाहिये। सुरेश तुम से मिलने-जुलने में झिझकता है। उसे संकोच है कि अभी मैट्रिक ही पास किया है उसने। हेम भी दिखलाई नहीं पड़ता है। तुमसे परिचय तो हुआ होगा। तुम्हारी ही भाँति वह भी बड़ा होनहार है। पर अभी तक उसका भाग्य जग नहीं पाया।"

इस हेम का चाचा जी के साथ इसका संबंध क्या है, प्रेम बिलकुक्ष न जानता था। 'इधर महेश का चुनाव भी हो गया। नौकरी अच्छी मिल गयी उसे। मगर उसकी पत्नी नहीं दिखलायी पड़ी। नौकरी लगते ही, जान पड़ता है, वह उसे अपने साथ ले गया है। सरोज कुछ बतला तो रही थी, पर उस समय मुझे नींद आ रही थी।' सोचता हुआ प्रेम बोला—चाचा जी यह हेम आपका कौन है, आपने नहीं बतलाया।

"ओः हेम!" परमेश्वरीलाल कुछ संकोच में पड़ गये। बोले—"बड़ी मर्मान्तिक कहानी है उसकी। कभी फ़ुरसत में बतलाऊँगा। इस समय संक्षेप में इतना ही जान लेना पथेष्ठ है कि उसकी माँ ने उसे बड़ी ही कठिनाई से बी० ए० करवा पाया है। लेकिन नौकरी फिर भी कहीं नहीं पा सका।

"तो फिर आजकल वह पढ़ता है?" प्रेम ने उत्सुकता से पूछा।

"करने को क्या है! उसके पास एक सरल विमल निष्कपट प्राण है उसके पास। अत्यन्त सेवापरायण और मनस्वी। कभी-कभी यहाँ आता है। देखो आज उसे बुलवाने का प्रयत्न करूँगा। मगर जब-जब वह आया है, मुझे रुलाकर गया है। सदा एक समस्या, एक उलझन; सो भी न अपने परिवार की, न अपने जीवन की। सदा दूसरों के दुख से दुखी, उनकी उलझनों का भागीदार। एक छोटा भाई क्षेम है। घर में सुशिक्षिता विधवा माँ है; उसपर भी सदा दुर्दिन छाये रहते हैं। आजकल तो अस्वस्थ भी हैं। पहले एक इंटर कालेज में अध्यापिका थी। कोरे अहंकार और द्वेष के कारण कालेज की कार्य-समिति ने उसे पृथक कर दिया था। खैर, तो कहने का अभिप्रायः यह है कि दुःख तो सब के साथ चिपके हैं। समस्याएँ घर-घर हैं। जन-जन का मन तृष्णाकुल विदग्ध और सन्ताप-ग्रस्त है। ऐसी दशा में आदमी दूसरों के लिये करे क्या? अपनी ही दुनियाँ ठीक तरह से बनाये नहीं बनती, अपना ही आत्म-क्रन्दन शान्त होने में नहीं आता। दूसरों के लिए कैसे कुछ हो सकता है?"

प्रेम ने अनुभव किया—चाचाजी की बातें यथेष्ट रोचक होती है। उनमें रस उमड़ उठता है। प्रश्न खड़ा करने में कहीं से कोई कौर कसर नहीं रखते। मगर यह क्या बात हुई कि आदमी दूसरों के लिये कर ही क्या सकता है?

अतः उसने कह दिया—"आपका अनुभव अधिक है। मेरे लिये तो आप बाबू के समान हैं। पर एक बात मैं नहीं समझ सका कि जब अपने को ही देखकर चलना है, तो फिर सहानु-

भूति और मानवता—सहयोग और सेवा, धर्म और कर्तव्य की बात को उठाने और मुँह पर लाने की क्या आवश्यकता है ? तात्पर्य यह कि आपको दूसरों का दुख देखकर दुख होता है और आप इसके लिए कुछ करना भी चाहते हैं। फिर भी परेशान हैं कि कुछ कर नहीं सकते । मैं तो इसको स्पष्ट आत्म-प्रवंचना समझता हूं । बात केवल सिद्धान्त की है। व्यक्तिगत रूप से मेरा कोई उपालम्भ नहीं। है कि नहीं चाचा जी ?

परमेश्वरी बाबू विचार में पड़ गये। किन्तु तब तक सुरेश ने आकर कह दिया—"बाबू, आप ज़रा अन्दर हो आइये।"

परमेश्वरीलाल अन्दर जो गये, तो क्या देखते हैं, सरोज अचेत पड़ी है। न कोई उत्तर देती है—न आँखें खोलती है।

प्रेम ने जब सुना, तो झट उसने अपना मत्था पकड़ लिया !

—:o:—

८

"कभी-कभी अतीत वर्तमान के मार्ग में, बिल्कुल वक्ष के सामने, डटकर खड़ा हो जाता है। वर्तमान की स्थिति कुछ ऐसी विनिर्मुक्त रहती है कि ऐसे समय अतीत का सामने पड़ना और अड़ना मानता हूं कि अवांछनीय होता है। किन्तु एक अतीत ही तो है, जिससे आँखें मिलाना वर्तमान के लिये दुर्निवार व्रीड़ा का कारण रहता है। जब हमारे लिये समन्वय और सायुज्य की अपेक्षा हो, तब अकस्मात् सहृदयता के मिलन द्वार बन्द हो जाएँ, तो सामाजिक उत्कर्ष की सम्भावना का दुर्वह और दुष्कर हो उठना सर्वथा स्वाभाविक और अनिवार्य है।

"देखो, सीधी बात करो मुझसे; दर्शन की भाषा में बोल कर मेरा दिमाग मत चाटो। मैं जानती हूँ तुम्हारा यह रोग बहुत पुराना है। मैं यह भी जानती हूं कि जब तुम्हें किसी के ऊपर आक्रमण करना होता है, तभी तुम अपना सिद्धांत प्रतिपादित करने के लिए शास्त्रीय प्रवचन झाड़ने लगते हो। लेकिन यह प्रयोग-विधि मेरे लिए अब पुरानी पड़ गई है।"

"यही अपने साथ प्रवञ्चना है, यही वह छलना है कि जिस

मनुष्य निरंतर अपने साथ करता रहता है। द्वेष सब के हृदय में रहते हैं—पर एक चातुर्य्य और कौशल भी तो होता है, जिससे एक बार अपने निकट सम्पर्क का व्यक्ति लाख मत-भेद रहने पर भी विरोधी नहीं बनता।"

"मैं किसी विरोधी की परवा नहीं करती। मुझे इस बात की चिन्ता कभी नहीं हुई कि लोग क्या कहते हैं।"

"एक युग था, जब इस प्रकार की घोषणाएँ महत्व रखती थीं। पराभूत और दुर्बल जन एक बार आतंकित हो उठते थे। वह सामन्तवादी युग था। आदमी इतना अधिक शक्ति-शाली होता था कि शत-शत व्यक्ति परस्पर मिल ही न सकते थे, सहयोग की ऐसी भावना ही उनमें विकसित न हो पायी थी कि वे मिल-जुलकर किसी योजना को जन्म देते और फिर अंत तक शांति के साथ उसे पूर्ण करने में संलग्न बने रहते। आज यह स्थिति बदल गयी है। आज जो व्यक्ति अपना दल और वर्ग बनाकर अपने आप एक संगठित शक्ति बनकर नहीं रहता, वह जीवन में न कभी महान कार्य कर सकता है—न ऐश्वर्य-भोग की संयोजना में ही कभी कृतकार्य हो सकता है।"

"फिर वही कोरा सिद्धान्त-निरूपण—फिर वही नेता मार्का प्रवचन! तुम्हें जो कुछ कहना है साफ-साफ क्यों नहीं कहते? क्या किसी ने मेरे विषय में तुमसे कुछ कहा है?"

"तुमने जाह्नवी को ठीक तरह से समझने का प्रयत्न नहीं किया मल्लिका। मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि तुमने उसके साथ अन्याय किया है।"

"क्यों, क्या तुमसे भेंट हुई थी ? सच-सच बताओ।"

"हुई थी भेंट। शोभा के विवाह के प्रीति-भोज में। अपनी ओर से केवल करबद्ध नमस्कार करके रह गयी थी। तब मेरे मुँह से निकल गया—"आजकल दिखाई नहीं देती हो। सखी के साथ मतभेद हो गया था—मिल-जुलकर कोई मध्यम मार्ग निकाल सकती थीं। ऐसा कुछ न करके संस्था को एक दम से छोड़ देना तो ठीक नहीं हुआ। मेरे पास संदेश और उपालम्भ आ रहे हैं कि आप लोगों ने यह क्या किया ? बुरी बात है। योग्य व्यक्तियों के साथ जब ऐसा व्यवहार होगा, तबसाधारण लोगों का निर्वाह कैसे होगा ! मेरी स्थिति—आप जानती हैं—ऐसी दुर्बल है कि पग-पग पर बहुत टोह-टोहकर चलना होता है। फिर जब कोई विषय मेरे सामने ही न आये, तो मैं कर ही क्या सकता हूँ ? इस कथन का उन्होंने यही उत्तर दिया—"मुझे व्यक्तिगत रूप से आपसे कोई शिकायत नहीं है। मैं केवल इतना ही कहना चाहती हूँ कि आज नहीं तो कल—एक न एक दिन अवश्य ही—दीदी का भ्रम दूर हो जायगा। समय बड़ी-बड़ी खाइयाँ पार देता है। मेरा यह घाव भी किसी दिन पुर ही जायगा।"

मल्लिका ने अनुभव किया था कि आवेश में आकर सच-मुच मैंने अनर्थ कर डाला है। चारों से उलहने-पर-उलहने आ रहे थे। शोभा के त्याग-पत्र पर शाल्मली की स्थिति तो बड़ी डावाँडोल हो रही थी। प्रबन्ध-समिति के ही कई सदस्य इस पक्ष में हो गये थे कि उन्हें पृथक् कर दिया जाय।

अविश्वास का प्रस्ताव भी उसमें आ चुका था। अनारकली ने सहायता बन्द कर देने की धमकी दी थी। कई दिन मल्लिका को दौड़ना पड़ा था। शोभा को मनाने में तो उसे नाटकीय अभिनय तक की शरण लेनी पड़ी थी। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी यह विषय इतना तूल पकड़ जायगा। उषा, शकुन्तला, मोहिनी, कल्याणी आदि कई लड़कियाँ तो जाह्नवी के घर जाने लगी थीं। कई लड़कियों के अभिभावकों ने स्पष्ट कहा था कि जाह्नवी देवी अगर विद्यालय में नहीं बुलाई जायँगी, तो वार्षिक-परीक्षा के बाद हम अपनी लड़की को दूसरे विद्यालय में भेजने को विवश होंगे।"

फिर भी मल्लिका के भीतर, अन्तर्मन में, एक सर्वग्रासी अहंकार जागृत हो उठा था। उसने यह प्रतिज्ञा करली थी कि कुछ भी हो, संस्था के गौरव को मैं सर्वथा अक्षुण्ण बनाये रखूँगी। जब-जब ऐसे अवसर आये, तब-तब उसने यही उत्तर दिया—"जो संस्था किसी एक व्यक्ति के बिना चल न सके, मैं उसको संस्था नहीं कुटी समझती हूँ। संस्थाएँ पारस्परिक सहयोग से चला करती हैं। यदि कोई व्यक्ति संस्था को अपना सहयोग न देना चाहे, तो इसके लिये हम उसे विवश कैसे कर सकते हैं?"

पर अन्त में एक ऐसा क्षण आ गया, जब अनारकली ने भी फोन के द्वारा मल्लिका से कह दिया—"जाह्नवी देवी को पुनः नियुक्त न किया गया, तो मेरे यहाँ से जो सहायता विद्यालय को मिलती है, वह मुझे बंद कर देनी पड़ेगी।"

इस बात के उत्तर में मल्लिका ने कह दिया—"इस

विषय में आपका भ्रम दूर करने के लिए में स्वयं आ रही हूं !"

अनारकली नगर से दूर सुरम्य उद्यान में बैठी हुई थी। रात्रि का समय था और चांदनी छिटकी हुई थी। चारों ओर रजनीगन्धा खिलकर मन्द गन्धानिल बिखेर रही थी। बेला और गुलाब में विवाद चल रहा था। बेला कह रहा था—'मेरा हास चन्द्रिका के आभिजात्य का एक अंग होता है।' और गुलाब का कहना था—'मेरी हँसी उस पागल तक को सान्त्वना प्रदान करती है, जिसकी पीड़ा इसी शिष्ट समाज और सभ्य जगत की देन होती है।' बीच में शुभ्र स्फटिक शिला-निर्मित गोल चबूतरा था, जिस पर आराम कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। कुर्सियों के ऊपर रबर की मुलायम गद्दियाँ पड़ी हुई थीं, जिनका आवरण मन्द-हरित मखमल का था। कुर्सियों के बीच में एक गोल टेबिल थी, जिसका आकार कुछ इस प्रकार का था, जिसमें नीचे से ऊपर तक तीन वृत्त बनते थे। उसके ऊपर उसी प्रकार का स्वच्छ शीशा लगा हुआ था, जिसके नीचे पारद का सुदृढ़ लेप था। उसके ऊपर चाँदी का एक पनडब्बा रखा हुआ था और साथ में एक तश्तरी, जिसमें गहरे छः कोण थे। जिनमें चिकनी सुपारी, गरी के कटे हुए नन्हे लच्छे, हरी सौंफ़, चाँदी की वर्क़ लगी हुई सुगन्धित पीली पत्ती की तम्बाकू और सुबासित मधुर नन्हीं-नन्हीं गोलियाँ। केन्द्र-बिन्दु पर अंगूठे के आकार का घर था, जिसमें केवड़े में तर किया हुआ श्वेत फाहा रखा हुआ था।

दासी ने सूचना दी कि मल्लिका देवी आपसे मिलने आई हैं।

अनारकली ने हाथ की घड़ी देखते हुए उत्तर दिया—"उनसे कहो, यहीं आ जायें।"

अनारकली की कलात्मक रुचियों में विशेष अन्तर नहीं पड़ा था। वह इन्द्रियजन्य सौख्य के वैचित्र्यपूर्ण तत्वों के अनुसंधान में उतनी संलग्न न रहती थी जितनी उसके सम्बन्ध में कल्पना की जाती थी। पारिवारिक वातावरण, सामाजिक हलचलों, राजनैतिक विचारों और समय-समय पर उभरने वाली व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से बचकर अपना मानसिक स्तर सन्तुलित रखने में उसकी विशेष रुचि थी। उसका बौद्धिक कुतुहल संसार के माया, भ्रम रहस्यादि निरूपण की स्वाभाविक जिज्ञासा से कभी मुक्त न होता। शृंगार-प्रसाधन और वस्त्र धारण करने का उसका ढंग एक ओर सतत प्रयोगशील बना रहता, तो दूसरी ओर स्वामी के साथ गाड़ी पर जब वह क्लब में जाती, तब—और वेदान्ती विचारक अथवा सिद्ध-योगियों के दर्शनार्थ उनके स्थान पर जाती तब भी—वह सोचती यही रहती कि जीवन में अक्षय सत्य क्या है? उसके सम्बन्ध में यह कह सकना दुष्कर था कि उसकी आसक्ति भोग-विलास में अधिक है, अथवा जीवन-तत्वों के निरूपण तथा अनुसंधान में। स्वादिष्ट भोजन के प्रति एक ओर उसके मोहों और प्रलोभनों का अन्त न था, दूसरी ओर वह प्रदोष के दिन निराहार उपवास-निर्वाह करती थी। दान-दाक्षिण्य में वह कभी पीछे न रहती। रुपये के सद्व्यवहार और सद्व्यय में वह अतिशय सतर्क, कठोर, कटु और उग्र भी हो उठती थी। साधारण रूप से उसमें ऐसा कोई दुर्व्यसन न था, जिससे

विद्यापति-परिवार की मर्यादा को यत्किंचित हानि पहुँच सकती। नृत्योत्सवों तथा नाट्यशालाओं में भाग लेनेवाले तरुणों पर अपना प्रभाव स्थापित रखने में यद्यपि उसे आनन्द आता था, किन्तु आचार-हीनता के प्रति उसके मन में अतुल वितृष्णा थी। उसका व्यवहार अत्यन्त शिष्ट होता, पर सन्तुलनहीन स्वच्छन्द ऐन्द्रिक उपासना को वह अग्राह्य ही नहीं, पतन का चिह्न भी समझती थी। सघन तमिस्रा में वह घंटों यही विचारती रहती कि जो अभद्र स्वेच्छाचार स्वप्नों में दृश्य बनकर आते हैं, उनसे मुक्ति प्राप्त करने के सुगम साधन क्या हैं और धूमिल अतीत की प्रभावजन्य स्वप्न-कल्पनाओं का मांगलीकरण कैसे सम्भव है ?

अनारकली ने मल्लिका को प्रेमपूर्वक पास बैठालते हुए पूछा—"कहिये, आजकल आपका स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

मल्लिका ने अनुभव किया—'यह तो मानना ही पड़ेगा कि अनारकली अपने वर्ग में सर्वाधिक सभ्य है।

उसने अपनी मानसिक पीड़ा की ओर संकेत करते हुए कहा—"स्वास्थ्य के साथ मानस-लोक का कितना घनिष्ट सम्बन्ध होता है, आप जानती हैं।"

"लीजिये, पान खाइये।···मगर हाँ, इससे पहले आप लस्सी ले लें, तो उत्तम होगा।"

अनारकली ने बटन दबा दिया, तत्काल एक परिचारिका उपस्थित होकर बोली—"आज्ञा ?"

मल्लिका बोल उठी—"क्षमा कीजिये, मैं इस समय लूँगी कुछ नहीं।"

"वाह-ऐसा कैसे हो सकता है ? अच्छा, एक तश्तरी में अंगूर, मगर जल्दी ।"

परिचारिका बोली—"अभी लाती हूँ ।"

"हाँ, अब कहिए, हृदय की ग्रंथियाँ खोलकर, निस्संकोच होकर ।"

अनारकली कथन के साथ मन्द-मन्द मुसकरा रही थी । निकट से आता हुआ रजत आलोक उसके मुख पर पड़ रहा था । मल्लिका के हृदय की गति कुछ तीव्र हो रही थी । धीरे-धीरे मन्द स्वर में उसने अपना पक्ष रखते हुए कहा—

"आपकी सहायता विद्यालय के संचालन में योग-दान के लिए है । उसका उपयोग उन सभी छात्राओं के लिये होता है, जो उसमें शिक्षा प्राप्त करती है । किसी एक व्यक्ति के भरण-पोषण के लिये उसका कोई दायित्व नहीं । यदि आप संस्था का हित चाहती हों, तो आपके लिये यह उचित नहीं कि हमारे ऊपर अनुचित दबाव डालें । जाह्नवी देवी के लिये यदि आपके मन में कोई विशेष भावना हो, तो बात दूसरी है । किन्तु उनका पक्ष लेकर ऐसी भावना मन में लाना विद्यालय की सम्पूर्ण छात्राओं के साथ आपका घोर अन्याय होगा । और तब यदि लोग इस बात की आशंका करें कि आपके व्यक्ति और दल के साथ जाह्नवी देवी का कोई विशेष सम्बन्ध है, तो मेरी धारणा है आपका यह कार्य उनके हित में न होकर अहित में होगा । उस दशा में कीर्ति के स्थान पर—उनकी और साथ ही साथ आपकी—जो अपकीर्ति फैलेगी, उसकी कल्पना आप सहज ही कर सकती हैं । उसका उत्तरदायित्व

भी आप और आपके यशस्वी परिवार पर होगा। मुझे बड़ा खेद है कि आपने बिना सोचे-समझे ऐसी बात कह कैसे डाली ? आशा है, आप ऐसी भावना को मन में कदापि स्थान न देंगी। यह बात न केवल आपके गौरव के लिये आवश्यक है, वरन् जाह्नवी के हित और संस्था के कल्याण के लिए भी अनिवार्य हैं। मुझे विश्वास है कि आप इस विषय पर पुनः विचार करके अपनी दूरदर्शिता का ही परिचय देंगी।"

अनारकली कुछ गम्भीर हो उठी। भाषा का संयम सुरक्षित रखते हुए उसने कुछ तीव्र होकर उत्तर दिया—

"मैं आपकी नीति से परिचित हूँ। केवल इस घटना से नहीं और भी कई घटनाओं से। मैं जानती हूँ कि आप अध्यापिका वर्ग के सर्वस्व-समर्पण की भूखी रहा करती हैं। व्यक्तिगत जीवन में तो यह प्रवृति निभ भी सकती है, किन्तु सार्वजनिक जीवन में इसका निर्वाह और पालन कदापि सम्भव नहीं। कोई भी व्यक्ति, आजके जीवन में किसी का क्रीत दास नहीं बन सकता। मुझे मालूम हैं कि जाह्नवी देवी ने नाटक के अभिनय में भाग लेने से इनकार कर दिया था। विद्यालय में और भी कुछ छात्रायें थीं, जिन्होंने अभिनय में भाग लेना स्वीकार नहीं किया था। आपने एक तो जाह्नवी देवी पर व्यवस्था-भंग करने का दोषारोपण किया और दूसरे उन पर यह भी लाँछन लगाया कि उन्होंने नाटक के साथ सहयोग न करने के लिये उन्हें भड़का दिया है। मैंने व्यक्तिगत रूप से अनुसंधान किया, तो मुझे कई ऐसी बातों का परिचय मिला, जिनका आपको बिल्कुल ज्ञान नहीं है। जाह्नवी देवी से जब मैंने बात की तो

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि आपका उनके व्यक्ति के साथ ही नहीं, गौरव के साथ भी द्वेष है। आप चाहती थीं कि मीरा के अभिनय में वे उसके आन्तरिक द्वन्द्व का ही अभिनय न करें वरन् नृत्य और संकीर्तन तथा गायन में भी पूरा भाग लें। पर आपने उनके साधना-रत जीवन पर ध्यान नहीं दिया। आपने यह नहीं अनुभव किया कि उन पर कैसा भीषण वज्रपात हुआ है—उन्हें कितना दुःख और सन्ताप है! एक ऐसी नारी, जो रात-दिन पति के वियोग में आहें भरती और मन-ही-मन क्रन्दन किया करती है, नाटकादि में अभिनय करना कैसे स्वीकार कर सकती है?"

"कर सकती है। वैसे चाहे न कर सकती, पर एक सार्वजनिक संस्था के हित में तो कर ही सकती है।"

मल्लिका देवी ने चश्मे का लैंस साफ़ करते हुए दृढ़ता के साथ उत्तर दिया।

अनारकली बोली—"नहीं कर सकती, किसी तरह नहीं कर सकती। अभिनय एक कला है। उसका सम्बन्ध जीवन के आन्तरिक उल्लास और उसके प्रशान्त वातावरण के साथ मन के तारल्य और अनुरंजना के विह्वल लास्य के साथ रहता है। हृदय में प्रेरणा और अन्तरात्मा में प्रमोद-जन्य उल्लास न हो, तो नर्तन में पग-संचालन कैसे हो सकता है? जिसकी आँखों में आँसू भरे हों और हृदय में अंगारे दहक रहे हों; उससे अभिनय का प्रस्ताव करते समय आपको लज्जा नहीं आई? जबकि आप एक सभ्य और सुसंस्कृत महिला होने का दावा करती हैं। आप और आपकी मुख्याध्यापिका शाल्मली देवी

दोनों की दोनों जाह्नवी देवी की सामाजिक प्रतिष्ठा नष्ट कर देने पर तत्पर हैं, यह मैं स्पष्ट देख रही हूँ।

अब तक मल्लिका देवी धैर्यपूर्वक सब कुछ सुन रही थी। किन्तु अब वे हतप्रभ, कंटकित और विचलित होकर बोलीं—"यह आपका मेरे साथ अन्याय है। आपको मेरे ऊपर व्यक्तिगत आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।"

अनारकली की भृकुटियाँ तन गईं। भर्त्सना-विधि में आवेश के साथ उसने कह दिया—"मुझे अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है। विद्यालय आपकी व्यक्तिगत संस्था नहीं है।·····हाँ, तो मैं अभी कह रही थी कि इस संकल्प के पीछे आपका चाहे जो मन्तव्य हो, पर इसमें निहित आशंकाओं की आप उपेक्षा नहीं कर सकतीं। जो व्यक्ति जीवन को रहस्यात्मक बनाकर रखता है, मैं जानती हूँ उसके आचारधर्म की निष्ठा का स्तर कितना चिन्त्य होता है। आज जिन सांस्कृतिक आयोजनों के पीछे हम प्रमत्त हुए घूमते हैं, उनका आन्तरिक रूप कितना घृणित, वीभत्स और जुगुप्सा-पूर्ण होता है, मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है। जहाँ तक कला की साधना का सम्बन्ध है मैं उसका समादर और अभिनन्दन करती हूँ। परन्तु कला के नाम पर मैं आचार-निष्ठा की कभी उपेक्षा नहीं कर सकती। मैं इतना और स्पष्ट कह देना चाहती हूँ कि मनुष्य आदि से लेकर अन्त तक मनुष्य ही रहता है। मैं उसकी देव-संज्ञा पर विश्वास नहीं करती। साथ ही आज के युग में मैं किसी आजीवन अविवाहिता नारी की पवित्रता पर भी विश्वास नहीं करतीं।"

मल्लिका देवी उठकर खड़ी हो गयीं और एक निःश्वास बोलीं—"अच्छी बात है। आप अपनी सहायता बन्द कर दीजिये।"

"बैठिये-बैठिये मल्लिका देवी" अनारकली ने पार्श्ववर्ती कुर्सी के हत्थे पर अपना हाथ दो बार गिराते-उठाते हुए कहा—"विवाद का अंत अभी नहीं आया है। हमारे जासूस छूट चुके हैं। वे अनुसंधान में लग गये हैं। हमें कुछ ऐसे प्रमाण भी मिल रहे हैं, जो शाल्मली देवी के धूमिल किन्तु रहस्यात्मक जीवन पर यथेष्ट प्रभाव डालते हैं। अभी मैं कुछ कहना नहीं चाहती, किन्तु इतना तो सिद्ध हो ही गया है कि आपके स्वामी घनानन्द बाबू की शाल्मली देवी के साथ कुछ अनबन हो गई है। यह अनबन क्या यह प्रमाणित नहीं करती कि पहले कभी उनके सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट भी रहे होंगे ?"

अनारकली का इतना कहना था कि मल्लिका देवी की सारी प्रभ-विष्णुता तिरोहित हो उठी। उनकी आँखों में आँसू भर आये। फलतः उनके मुँह से निकल गया—"क्षमा करें, अब इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।"

वे जाना ही चाहती थीं कि तब तक अंगूर की तश्तरी उनके सामने आ गई।

स्वामी की इस बात को सुनकर मल्लिका देवी को अनारकली का यह सारा वार्तालाप स्मरण हो आया। फिर इस विषय पर उन्होंने मौन धारण कर लिया। कहीं एक बजे

रात उन्हें नींद आई। प्रातःकाल हुआ। शेफाली पहले उठा करती थी। निकट आकर बोली—"ममी उठो न अब? देखो सवेरा हो गया।"

उस समय जंगली बंगले में झाड़ू लगा रहा था। नाश्ता तथा भोजन बनानेवाली महरागिन फाटक के भीतर जा रही थीं। माली गमलों के फूल-पौधों को फौव्वारे से सींच रहा था।

मल्लिका देवी उठीं और आँखें मलती-मलती सीधी स्नानागार चल दीं। घनानन्द बाबू अभी घूमकर लोटे न थे और फ़ोन की घंटी बज रही थी। शेफाली तुरन्त उस पर जा पहुँची। रिसीवर कान से लगाया, तो विदित हुआ—श्री जगन्नाथ पाण्डेय का फ़ोन है। वे कह रहे थे—"घनानन्द बाबू को फ़ोन पर भेज दो।"

शेफाली ने विनोद के भाव से उत्तर दिया—"डैडी तो घूमने गये हैं। कोई ख़ास ज़रूरत हो तो फ़ोन को ही उनके पास भेज दूँ।"

पाण्डेय जी के मुँह से निकल गया—"स्टुपिड। घूमते समय फ़ोन भला उनके पास कैसे पहुँच सकता है!"

शेफाली ने भविष्य को वर्तमान के घाट उतारते हुए उत्तर दिया—"क्यों, रेडियो जैसे सदैव और सर्वत्र कार्यशील रहता है, वैसे फ़ोन भी तो हो सकता है।

पाण्डेय जी हँस पड़े। बोले—"हाँ शेफाली, हो तो सकता है।.....अच्छा तो तुम उन्हें भेज तुरन्त देना।"

शेफाली ने रिसीवर रख दिया।

पाण्डेयजी पहले इलाहाबाद में मुंसिफ थे। शोभा से उनका विवाह हो गया था और अब वे बदलकर कानपुर आ गये थे।

मल्लिका ज्यों ही स्नानागार से निकली, त्योंही घनानन्द बाबू आ गये। बल्कि उनका साक्षात्कार भीतरी बरामदे में हुआ, जो आँगन से लगा हुआ था। शेफाली उनके निकट आकर बोली—"डैडी डैडी, तुमको पाण्डेय जी ने याद किया है।"

"पाण्डेय जी ने ! क्यों ?"

"अब यह मैं क्या जानू ? फ्रेंड तुम्हारे और तुम्हीं पूछते हो, क्यों ?"

"अरे, यह पुरखिन की तरह बोलना तूने कहाँ से सीखा ?"

"क्यों, अभिनय सीखने में फिर बाक़ी क्या रह जाता है ?"

घनानन्द विचार में पड़ गये।—'आज के ये बच्चे निसंदेह हमसे कहीं बुद्धिमान हैं।'

मल्लिका की आँखें लाल हो रही थीं। मुखश्री म्लान थी। घनानन्द को कुछ ऐसा अनुभव हुआ, जैसे अत्यधिक चिन्ता रखने के कारण उसका तारुण्य संकट में पड़ गया हो !

ज्योंही घनानन्द बाबू भीतर से लौटकर पुनः अपने कक्ष की ओर मुड़ने लगे, त्योंही मल्लिका बोली—"ज़रा इधर आओ। तुमसे एक आवश्यक सलाह करनी है।"

शेफाली भी उसके साथ हो ली। तब मल्लिका ने उससे कह दिया—"बेटे, उठते ही पहले स्वर-साधना की जाती है, तब और कुछ।"

घनानन्द बाबू ने समर्थन करते हुए कह दिया—"कहा है—स्वर ही ब्रह्म का रूप है। क्योंकि सारे विश्व का शासन स्वरों द्वारा होता है।"

पलक गिराते-उठाते विस्मयात्मक मुसकान के प्रकार में शेफाली बोली—"ऐसा !" फिर अपने उस कक्ष में चल दी, जहाँ उसके वाद्याभ्यास की व्यवस्था थी।

मल्लिका के कक्ष में पंखा चलने लगा। जंगली ट्रे में चाय लेकर आ पहुँचा। घनानन्द बाबू ने बैठते ही कह दिया—"जान पड़ता है, तुम्हारे स्वाभिमान को गहरा आघात पहुँचा है।"

मल्लिका की आंखों में आँसू छलक उठे।

घनानन्दबाबू बोले—"चिन्ता मत करो। समस्या का कोई-न-कोई समाधान शीघ्र निकल आयेगा।"

रूमाल में आँसू पौंछती हुई उन्मन मल्लिका बोली—"अगर में विद्यालय की सेक्रेटरीशिप से त्याग-पत्र दे दूँ, तो शाल्मली की स्थिति डाँवाडोल तो न हो जायगी ?"

घनानन्द वावू राजनीति-कुशल व्यक्ति थे। उनके मुँह से निकल गया—देखो मल्ली, एक बात तुम्हें सदा स्मरण रखनी चाहिये कि सबसे पहले इस विश्व के लिए हम हैं, उसके पश्चात् और कुछ। तुम्हें सबसे पहले अपनी मर्यादा रखनी है। ऐसा न होना चाहिये कि शाल्मली देवी की रक्षा में तुम अपना गौरव खो दो।"

"पर विद्यालय की सेक्रेटरीशिप से पृथक् हो जाने का अर्थ है, मेरा मरण।" मल्लिका छन्नी में चीनी डालकर उस

पर चाय ढालती हुई बोल उठी—"मैं इस आघात को सहन न कर सकूँगी ।"

धनानन्द बाबू मुसकराने लगे । उन्होंने चाय पर दूग्ध की मन्द धार छोड़कर कह दिया—"तुम्हारा भोलापन अब तक नहीं गया । राजनीति में सभी कार्य सचाई और गम्भीरता के साथ नहीं होते । उसका प्रत्येक पग अपने पीछे एक विशेष अभिप्राय रखता है । त्याग-पत्र देने का अर्थ सदा पार्थक्य नहीं होता । शतरंज की किसी गोट को जब हम स्थानान्तरित करते हैं, तब—और उसके बाद जब हम उसे पुनः दूसरे घर में ले जाते हैं, तब भी—यह निहित रहता है कि उसका भावी उपयोग सर्वथा क्रान्तिकारी होगा । मेरे कहने से तुम एक बार त्याग-पत्र देकर देखो तो ! मुझे पूरी आशा है कि इसका प्रभाव शोभा रानी और अनारकली पर तुम्हारे पक्ष में ही पड़ेगा ।"

मल्लिका चाय पी रही थी और घनानंद बाबू टोस्ट पर दाँत जमाये हुए थे ।

शेफाली वीणा लिये गा रही थी—"बदरवा फिर-फिर घिरि-घिरि आवें ।"

—:o:—

६

प्रेम और महेश कानपुर के एक कालेज में साथ-साथ पढ़ चुके थे। दोनों में बड़ी आत्मीयता थी, किन्तु कालेज के विद्यार्थी-संघ के वार्षिक निर्वाचन में मनोमालिन्य कर बैठे थे। प्रेम ने महेश से परामर्श किये बिना सभापति पद के चुनाव में मनोनयन-पत्र भर दिया था। बस, बात कुल इतनी थी। महेश ने जब सुना, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उनमें आत्मीयता इस सीमा तक थी कि दोनों साथ-ही-साथ बैठकर पढ़ते, साथ-ही-साथ चाय पीते, भोजन करते। घूमने भी साथ ही जाते और सिनेमा तो और किसी के साथ न देखते न थे।

मनोनयन पत्र भर देने के अनन्तर जब दोनों की भेंट हुई तो प्रेम ने कहा—"यार एक बेवकूफी कर बैठा हूँ। अचानक शारदाप्रसाद मेरे कमरे में जो आया और एकाएक बोल उठा 'आज मनोनयनपत्र भेजने की अन्तिम तिथि है। चलते हो, प्रोफ़ेसर कौशल के पास ?"

प्रोफेसर कौशल निर्वाचनाधिकारी थे और साथ ही शारदा के फूफा भी।

"मैं उस समय दाढ़ी बना रहा था। मैंने पूछा—"क्यों. क्या तुम वहीं जा रहे हो ?"

"हाँ आज फूफा जी के सबसे छोटे चिरंजीव प्रदीप की वर्षगाँठ है। नहीं जाऊँगा तो बुरा न मानेंगे ?"

मैंने सोचा—महेश से भी पूँछ लूँ तो अच्छा रहेगा। किंतु शारदाप्रसाद से इस विषय में कुछ न कहकर मैंने उत्तर दिया—मेरे ख्याल से अगर शाम को चलो, तो अच्छा रहेगा।"

शारदा ने सिगरेट की राख को तर्जनी के स्पर्श से गिराते हुए कह दिया—"नहीं पार्टनर, इसी समय चलना होगा।" और घड़ी देखते हुए उसने इतना और जोड़ दिया—"बस, हाथ मुँह धोलो और चलो। नहाना-वहाना लौटकर।"

मैंने क्षौर-सामग्री को समेटते हुए उत्तर दिया—"तुम सदा घोड़े पर सवार होकर आते हो। मनोनयनपत्र भरने को मैं भर दूँ; पर फिर साथ और सहयोग की भी तो कोई योजना होनी चाहिये। हँसी कराने से क्या लाभ ?"

तुम जानते हो, शारदा राजनीति का विद्यार्थी है। अपने विषय में वह सदा यही सोचता रहता है कि जहाँ तक कूटनीति का सम्बन्ध है, कोई व्यक्ति मेरा सामना नहीं कर सकता। अतः उसने उत्तर दिया—अवसर कोई ऐसा पका पकाया फल नहीं, जो आमकी भाँति अपने ऊपर लटक रहा हो। आंखें खोलकर देखना पड़ता है कि परिस्थिति कैसी है। सन्देहास्पद हो तो उसमें संशोधन करना होता है। यदि कहीं उसमें दोष भी हो, तो उसे अनुकूल बनाना होता है। अवसर तो उस बीज के समान है जिसे सतर्कता के साथ समय पर ही धरती पर बो देना होता है। बीज से अंकुर फूटता है।

अंकुर से पौधा होता है। फिर उसे सींचने और उचित खाद देकर पनपाने की आवश्यकता होती है। तब कहीं वह वृक्ष बन कर एक के स्थान पर एक साथ सहस्रों फल प्रदान करता है।—बेवकूफी मत करो। अवसर से लाभ उठाओ। सफल हो गये, तो क्या कहने हैं। विश्वविद्यालय भर में तुम्हारा ही नाम सबकी ज़बान पर होगा। एक तो असफल होने की कोई बात नहीं। और मान लो, हो भी गये तो अपना क्या बिगड़ेगा? कौन नहीं जानता कि लटकता हुआ पदार्थ जब हिला दिया जाता है तो वह थोड़ी देर तक आपसे आप इधर-उधर हिलता रहता है। उसके हिलने की क्रिया पवन के विरोध और विघर्षण से क्रमशः मन्द पड़ती जाती है। तुमको मालूम ही है, किसी ने जीवन में नित्य घटित होनेवाली इस घटना का महत्व नहीं समझा था। पर बालक गेलीलियो ने एक दिन सहसा पीसानगर के गिरजाघर में लटकते हुए लैम्प को देखा। पवन झकोरे से वह झूलने लगा था। इसी दोलन गति ने पेन्डुलम के सिद्धान्त को जन्म दिया।

शारदा का इतना कहना था कि मुझे कह देना पड़ा—"अच्छी बात है पार्टनर, परिणाम चाहे जो हो, मैं तुम्हारी बात टालूँगा नहीं। सबके सहयोग से ऐसा प्रयत्न करूँगा कि जान लड़ा दूँगा। तुमको भी पता चल जायगा, किस प्रेम से पाला पड़ा है!" इस तरह मैं उसकी बातों में आ गया। मनोनयनपत्र भर तो आया हूँ। पर अब भगवान मालिक हैं।"

महेश अपने मनोभावों को गुप्त रखनेवाला व्यक्ति था। प्रेम की बात सुनकर सोचने लगा—'मुझसे पूछे बिना पहले तो

मनोनयनपत्र भर दिया। अब मुझे उसकी सूचना मात्र देकर मेरा सहयोग प्राप्त करना चाहता है।'

प्रेम को सन्देह हो उठा। सोचने लगा—"जान पड़ता है इसको ईर्ष्या हो रही है।"

उसका अनुमान सत्य था। वह मन-ही-मन कह रहा था—'लोहे के चने चबवा दूँगा, बच्चू को आटा-दाल का भाव मालूम पड़ जायगा।'

इसी समय प्रेम बोल उठा—"अरे, तुम सोचने क्या लगे महेश मैं तो तुम्हारे ही भरोसे पर फूलता हूँ। विश्वविद्यालय में ऐसा कौन है, जो हम लोगों की मित्रता से परिचित न हो। मेरी विजय वास्तव में तुम्हारी विजय होगी। और यदि कहीं हार गया, तो मेरे साथ-साथ तुम्हारी बदनामी भी कम न होगी। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना।"

महेश सोचने लगा—'अब कैसी बातें चुपड़ रहा है! मुझे मिलाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। मगर मैं इतना बुद्धू नहीं हूँ, जो इसकी भड़ी में आजाऊँ।'

उसने उत्तर दिया—"बड़ा अच्छा किया। जीत जाओगे तो मुझसे बढ़कर प्रसन्नता किसी को न होगी। पर मेरी स्थिति बड़ी चिन्ताजनक है। तुमने मुझे पहले से बतलाया नहीं। नहीं तो कोई बात न थी। तुम्हारे सिवा मैं भला किसका समर्थन करता? पर अभी-अभी पूर्णचन्द्र मेरे पास आया था। पहले तो मैंने कोरा जवाब दे दिया कि मैंने अभी इस विषय में कुछ सोचा नहीं है। अगर प्रेम का हित बाधक न हुआ, उसने किसी को वचन न दे दिया, तो मैं तुम्हारा साथ देने पर विचार

करूँगा।"

मेरे इस उत्तर को सुनकर पूर्णचन्द्र मर्माहत हो उठा। बोला—"प्रेम ने तो शारदा के बढ़ावे में पड़कर मनोनयनपत्र मात्र भर दिया है। मुझसे संघर्ष करने की उसकी क़तई इच्छा नहीं है। और अगर ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न भी हुई, तो हम लोग मिलकर किसी ऐसे निश्चय पर पहुँचने की चेष्टा करेंगे, जिससे परस्पर कोई संघर्ष उत्पन्न न हो। अतएव अब मुझे वचन दो कि मेरा साथ दोगे।—तुम जानते हो, यह पूर्णचन्द्र सदा से मेरा विरोधी रहा है। पर यार इस बार तो वह मेरे साथ ऐसी शालीनता से पेश आया कि मैं प्रभावित हो गया। परिणाम यह हुआ कि मुझे उसको सहायता के लिए वचन देना पड़ा।"

इस उत्तर में एक भी बात महेश ने ऐसी नहीं कही थी, जो सत्य होती। सभी बातें उसकी तात्कालिक कल्पना को उपज थीं। बातें होना दूर रहा, उसके पास पूर्णचन्द्र आया तक न था। किन्तु महेश को तो जलन इस बात की थी कि यह—अब इस सीमा तक—अहंकारी और दम्भी हो गया है कि ऐसे महत्वपूर्ण विषयों पर मुझ से सलाह लिये बिना जो मन में आता है, कर उठाता है। यह बात उसके मनमें क्यों न आयी कि महेश को ही क्यों न खड़ा किया जाय? इसका निहित अभिप्राय तो यह हुआ कि प्रेम अपने आपको मुझसे अधिक मानता है।

प्रेम को पहले तो महेश के इस कथन पर विश्वास ही न हुआ। उसने सोचा—'यों ही मुझे चिढ़ाने के लिए कह रहा

है।' अतः उसके मुँह से निकल गया—"मज़ाक छोड़ो । सच सच बतलाओ, क्या वास्तव में तुमने पूर्णचन्द्र को वचन दे दिया है ?"

महेश इस उत्तर को सुनकर मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ । सोचा—'अब पड़े हैं बच्चू निन्यानबे के चक्कर में।' उस ने गम्भीर बनकर तुरन्त उत्तर दे दिया—"तुमसे झूठ बोलने में भला मुझे क्या मिल जायगा !"

प्रेम निराश होकर लौट आया ।—फिर दोनों का साथ एक दम छूट गया । पास बैठकर निरन्तर मनोविनोद करने वाले, साथ बैठकर दूसरों को बनाते हुए नित्य खाने-पीनेवाले, हाथ-में-हाथ डालकर सड़कों पर चहलक़दमी करनेवाले, पढ़ते-पढ़ते ऊबकर एक दम से सिनेमा देखने को तत्पर हो जानेवाले दो व्यक्ति सर्वथा पृथक हो गये थे। प्रेम सोचता था—'मैंने कितने स्नेह के साथ इससे सहयोग की प्रार्थना की थी ? पर इसने उस पर ज़रा भी ध्यान न दिया ! क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि इसके मन में चोर था ? यह स्वयं संघ के सभापतित्व के लिए लालायित था, तो इसने मुझसे स्पष्ट कहा क्यों नहीं ? क्या मैं उस दशा में इसके साथ सहयोग न करता ? फिर इसने तो जीवन भर की आत्मीयता पर पानी फेर दिया ! मनुष्य की परख ऐसे ही समय होती है। इसने मुझे ऐन वक्त पर धोखा दिया ।

कभी-कभी प्रेम हेम से भी मिलता रहता था। एक रेस्तोराँ में पास-ही-पास बैठे हुए दोनों चाय पी रहे हैं। हेम दुबला-पतला, विनयशील और मनस्वी। सदा मुस्कराकर

बातें करता। किसी कार्य के लिये कभी कहो, इनकार कर ही न सकेगा। केश बड़ गये हैं। कटाने का अवकाश नहीं मिला। लेकिन उसको परवा नहीं। प्रेम के समर्थन में दौड़-धूप करते-करते थककर चूर-चूर हो गया था। प्रेम स्वयं भी बहुत उद्विग्न था। बोला—"कहो, क्या स्थिति है ?"

हेम ने उत्तर दिया—"स्थिति गम्भीर है। महेश चारों ओर इस बात का प्रचार कर रहा है कि कुछ भी हो, मैं इस विषय में अन्त तक तटस्थ रहूँगा। अगर मैं पूर्णचन्द्र को सहयोग न दूँगा, तो दूँगा प्रेम को भी नहीं।"

प्रेम विचार में पड़ गया। फिर सहसा कुछ सोचकर बोला—"मैं अगर हार गया, तो क्या महेश की बदनामी न होगी ? उसके साथ मेरे कैसे सम्बन्ध रहे हैं, सभी जानते हैं।"

"जानते हैं। मगर साथ में यह भी जानते हैं" हेम अंगुलियाँ चटकाते हुए बोला कि इस विषय में उसका सहयोग तुम्हें प्राप्त नहीं है। तुम्हें मालूम होना चाहिये, हमारे सैकड़ों मत तो इसी आधार पर विरोध में चले जायँगे।"

"यहीं लोग ग़लती करेंगे। महेश क्या खुले तौर पर यह कहने को तत्पर हो सकता है कि विश्वव्यापी शान्ति के लिए भारत की तटस्थ नीति श्रेयस्कर नहीं ? महेश क्या यह मानने को तैयार है कि अपने देश के अन्दर विदेशी उद्योग का पैर जमने देना राष्ट्र की समृद्धि के लिए कभी निरापद नहीं हो सकता ? मेरी विचारधारा तो प्रचारित और प्रसारित परिपत्रों से स्पष्ट हो ही चुकी है। ऐसी दशा

में उसका चुप बना रहना भी क्या उन स्थितियों के साथ उसका आन्तरिक विरोध करना न होगा, राष्ट्रीय हित से जिनका बड़ा ही घना सम्बन्ध है ?"

"व्यक्तिगत रूप से वह इन बातों को कोई महत्व नहीं देता। उसका कहना है कि जब इस विषय में मेरा कोई सहयोग नहीं तो कोई असहयोग भी नहीं। तब यह सोच लेना भी उचित नहीं कि मैं राष्ट्र का अभ्युत्थान नहीं चाहता अथवा निश्चित रूप से मैं प्रगति-विरोधी हूँ। मेरा तो यही एक निश्चित मत है कि कुछ कारणों से मैं इस निर्वाचन में कोई सक्रिय भाग लेने को तैयार नहीं।"

"निर्वाचन में सक्रिय भाग न लेने का अर्थ है वह मौन, जो अग्निकांड के समय अपनी छतसे विध्वंस को खड़े-खड़े देखता और फ़ायर-ब्रिगेड-स्टेशन को सूचना देने के लिए फ़ोन तक नहीं करता।"

प्रेम को गरजता हुआ देखकर हेम मुसकराने लगा। बोला—"ऐसा ही है, तो तुम इसी निमित्त एक सभा क्यों नहीं कर डालते ? अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए महेश को सर्वथा विवश क्यों नहीं कर देते ?"

"हाँ यार, कहते तो ठीक हो" प्रेम यकायक चौंकता हुआ सा बोला—"एक सभा का आयोजन करना ही होगा।"

फिर वह कुछ विचार में पड़ गया।

इतने में हेम बोला—"और भी एक बात है। महेश अगर खुलकर तुम्हारा समर्थन करने को तत्पर नहीं, अगर वह अंदर ही-अन्दर तुम्हारी विजय से जलता है, तो तुम इसे भी स्पष्ट

क्यों नहीं कर लेते ? भीतर-ही-भीतर अग्नि सुलगाने की अपेक्षा यह कहीं उत्तम होगा कि लपटें जल्दी-से-जल्दी बाहर आजायँ ।—संसार एक बार देख तो ले कि कौन कितने गहरे पानी में है ।"

"तो ऐसा करो कि अभी तुरन्त एक संक्षिप्त भूमिका के साथ महेश से कहो कि जो कुछ हुआ सो हुआ । अब इतना काम तो कर ही दो कि एक परिपत्र छपवाकर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दो ।

हेम की बात प्रेम की समझ में आ गयी ।

प्रेम के आने पर महेश ने हँसते-हँसते उससे हाथ मिलाया । मुसकराते-मुसकराते उसे चाय पिलायी । फिर साथ-ही-साथ बैठकर भोजन किया । रात में भी देर तक दोनों वार्तालाप करते रहे ।

परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन ही एक ऐसा परिपत्र प्रकाशित हो गया, जिसमें उन सभी व्यक्तियों के नाम—निवेदकों में—दिये हुए थे जिन्हें प्रेम का समर्थक समझा जाता था । किन्तु महेश ने अपना नाम उसमें फिर भी न दिया था । उसका कहना था कि तुम्हारी और सब बातें मैं स्वीकार कर लूँगा, पर खुलकर तम्हारे पक्ष में मत-संग्रह करने के लिए दरवाजे-दरवाज़े कभी न दौड़ूँगा ।"

"क्यों, इसका क्या अर्थ है ?" प्रेम ने पूछा ।

मुसकराते हुए महेश ने उत्तर दिया—"अर्थ-वर्थ मैं कुछ नहीं जानता । कोई अर्थ इसका लगाना भी नहीं । मालूम नहीं क्या बात है ?—कदाचित् मैं स्वयं अपने भीतर स्पष्ट नहीं हूँ ।

अधिक से अधिक बस इतना ही कह सकता हूँ।"

फिर कथन के साथ वह मुसकराने लगा।

प्रेम ने अनुभव किया, यह कुछ वैसी ही मुसकराहट है जो डस लेने के बाद भुजंग की होती है। वह कुछ विचार में भी पड़ गया। नाना प्रकार के प्रश्न उसके भीतर उठने लगे।

—मैंने इससे क्षमा माँग ली। फिर भी इसके मन का मैल न मिटा। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि अब भी इस की द्वेषाग्नि शान्त नहीं हुई ?

—मेरे लिए दरवाज़े दरवाज़े दौड़ने में इसे संकोच होता है। क्या इसका यह अर्थ नहीं कि यह अपने अहम् की तुष्टि के लिए मेरी मान-हानि का आह्वान करने को तत्पर है !

—अपने दल का पूर्ण समर्थन प्रकट करते हुए भी यह अपने व्यक्ति को आगे नहीं रखता। तो क्या यह मेरे इस निर्वाचन को एक नाटक बनाना चाहता है ?

उधर प्रेम ने देखा, महेश के निकाले हुए एक ही परिपत्र ने स्थितियों में बड़ा सुधार उत्पन्न कर दिया है। यत्र-तत्र लोग कहते फिरते हैं—'इस परिपत्र की शैली पुकार-पुकार कर कह रही है कि यह महेश का लिखा हुआ है। यार यह आदमी है बड़ा विचित्र।'

तब प्रेम ने पुनः हेम से परामर्श किया। प्रेम ने सारी परिस्थिति उसके सामने स्पष्ट रूप से रख दी। उसने कहा—मैं तुम्हारे कहने से एक बार उसके पास जाकर नाक रगड़ चुका हूँ। अब चाहे मैं हार ही जाऊँ, पर किसी काम के लिए उससे कुछ न कहूँगा। यों भी तरह तरह की बातें फैल रही हैं। निवारण कहता फिरता है—यह लो, देखो, प्रेम के समर्थकों

में मेरा नाम दे दिया और इसके लिए मुझसे पूछा तक नहीं ! सुनते हैं—वनमाली ने रेस्तोराँ में बैठे दस-बारह व्यक्तियों के सामने कहा है—भई यह ढंग में पसन्द नहीं करता कि परचे में नाम देने से पहले पूछना दूर रहा, मुझे सूचना भी न दी जाय ! और सुधीर तो बड़बड़ा रहा था—जब मैं पूर्णचन्द्र के दल में सम्मिलित हो गया हूँ, तब प्रेम के समर्थकों में मेरा नाम दे देना छात्र-संघ की आँखों में धूल झोंकना है । मेझे इस परचे का उत्तर देना पड़ेगा ।'

हेम मुसकराने लगा । बोला—"निर्वाचन के समय इन बातों पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता । अगर उसने ऐसा किया भी, तो उसी की स्थिति संकट में पड़ जायगी । अब भी लोगों ने कह ही डाला—'न ही मे रहा—न शी में—चमगादड़ कहीं का ! ऐन वक्त पर पूर्णचन्द्र का समर्थक बन जाने के कारण जवाब देते-देते वह स्वयं घबरा उठा है । फिर उसकी ऐसी स्थिति भी नहीं है कि जवाव देने के लिए परचा छपवाये । टका तो वह खर्च कर नहीं सकता ।"

प्रेम के मुँह से निकल गया—"अच्छी बात है । तुम्हारा यह धैर्य, विवेक और नीति-निर्देशन मैं कभी नहीं भूलूँगा । जो कुछ होना हो, वह हो जाय । मैं सब कुछ सहने के लिए तत्पर हूँ ।"

सरोज अपने कक्ष में उदास-उदास बैठी थी । पलँग के निकट की खिड़की खुली हुई थी और रिम-झिम रिम-झिम

वर्षा की फुहार गिर रही थीं। घने एकाकार मांडलिक भूरे रंग के बादल ऐसे जान पड़ते थे, मानो धरती के साथ उनका दाम्पत्य सम्बन्ध हुए अभी थोड़ा ही समय बीता हो!

प्रेम को आये आज दूसरा दिन था। वह समझ रहा था कि मूर्छा आने के आधार क्या हो सकते हैं। एक ओर वह अपने संकल्प पर दृढ़ रहना चाहता था। दूसरी ओर वह सरोज का समाधान भी कर देना चाहता था। उसके मन में द्वन्द्व चल रहा था। वह अपने आप से लड़ रहा था। उसका पलँग कक्ष में उत्तर की ओर था। वह रात के तीन बजे उठा था और अब भी उसके हाथ में एक पुस्तक थी। उसका विषय था—व्यावहारिक मनोविज्ञान। कभी-कभी वह सरोज की ओर इस दृष्टि से देखने लगता कि मेरे इस असामयिक संयम की उसके ऊपर क्या प्रतिक्रिया हो रही है। वह समझ रहा था कि मेरा यह व्यवहार उसकी भावना पर एक आघात है। जो लोग जीवन के व्यापक महत्व को नहीं समझते प्रतिक्रियाओं से अभिभूत हो-होकर केवल ऐन्द्रिक मोह और आकर्षण से आक्रान्त होते रहते हैं, वे लक्ष्य-हीन मानव जीवन के विकासशील पथ पर चलते-चलते कहीं न कहीं कंटकित और पतित भी हो कर रहते हैं। वह यह भी सोच रहा था कि संयम के प्रति निष्ठा उन्हीं व्यक्तियों में होती है जो धीर-वीर और साहसी होते हैं। वे ख़तरों से नहीं डरते और तूफ़ानों टक्कर लेने में उन्हें मजा आता है।

एकाएक प्रेम ने पुस्तक रख दी। तुरन्त उसने सरोज की भावना पर एक आघात और प्रहार करते हुए पूछा—

"अच्छा सरोज, अगर कोई ऐसी घटना हो जाय कि मैं इस संसार से सदा के लिए विदा हो जाऊँ, तो तुम अपने जीवन के साथ किस तरह पेश आओगी ? मतलब यह कि अकस्मात् स्वप्न टूट जाने पर जैसे हम यह सोचने लगते हैं कि चलो टीक है, कहीं कुछ भी नहीं बिगड़ा है। हम जहाँ के तहाँ स्थिर हैं। हमारा संसार ज्यों का त्यों बना हुआ है। बिलकुल इसी भाँति तुम अपना जीवन व्यतीत कर लोगी ? या तुम्हारे मन में कोई ऐसी कल्पना उभर उठेगी कि मरण तुम्हें प्यारा लगेगा।"

सरोज एकदम से चौंक पड़ी। अवाक्, स्तब्ध ! और उसने कह दिया—"मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, आज कहा सो कहा, भविष्य में फिर कभी ऐसी बात न कहना। तुम्हें शायद यह बात न मालूम होगी कि मैं तुम्हारी आन पर प्राण दे सकती हूँ। मैं निराहार रहकर तुम्हारी प्रतीक्षा में द्वार के निकट खड़ी-खड़ी जीवन की अन्तिम घड़ी तक स्थिर अडिग बनी रह सकती हूँ। कभी तुम्हारे मन में कोई अन्यथा जैसी चीज़ आये तो तुम मुझे अपने हाथ से विष पिला सकते हो। कभी चूँ नहीं करूँगी। आँसू मेरी आँखों से नहीं निकलेंगे। प्यासी की प्यासी ही बनी रहकर सदा के लिए शान्त हो जाऊँगी। जब तुम मेरा दाह-संस्कार करोगे, तब मेरी जलती हुई अस्थियाँ भी पुकार-पुकार कहेंगी कि मैं केवल तुम्हारी थी—मैं केवल तुम्हारी थी।

प्रेम ने देखा—सरोज का कण्ठ भर आया है। आँखों से आँसू टपक रहे हैं। शरीर का लोम-लोम एक बार क्रन्दन कर

उठता है।

प्रेम अपने पलँग से उठकर सरोज के निकट जा पहुँचा। अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुए उसने कह दिया—भगवान तथागत का स्मरण करो। कर्तव्य के नाम पर उन्होंने यह जाना ही नहीं कि नारी का प्यार और संतान की ममता क्या वस्तु होती है। आखिर वह भी एक मनुष्य ही थे। जन-जन का दुख-दारिद्रय, मनुष्य की हीनता, नियति के राज्य में उसका विवश पराजय, वृद्धाअवस्था का जीर्ण-जर्जर कंपित कलेवर और श्मशान-मूक मृत्यु का दुर्निवार धू-धू कर अट्टहास सब कुछ देखकर वे जब विरक्त हुए तब दृढ़ संकल्प-निष्ठा ने उनका जीवन बदल दिया था। मेरी इस विचारधारा को सुनकर तुम्हें आश्चर्य होता होगा। लेकिन शायद तुम्हें यह नहीं मालूम कि मेरे पिता के गोरे गात और झुर्रियों से भरे हुए दृष्टिक्लान्त मुख पर कलंक की कैसी कालिमा लगी हुई है। पिता जी ने चार विवाह किये और हम सब मिलकर चौदह भाई-बहिन हैं। पास-पड़ोसी और समाज का उनके प्रति एक लाञ्छन है—हूँ" चार विवाह और चौदह बच्चे! सबके सब गये-गुजरे, अपढ़, आवारा, लंपट और पतित—सुअर! तुम पसंद करोगी कि इस लाञ्छन का एक बेशर्म की तरह मैं सदा सुनता रहूँ। मेरे ऊपर एक महान् कर्तव्य का उत्तरदायित्व आ गया है। मैं अपने से सम्बन्धित जगत को यह दिखा देना चाहता हूँ कि मेरे पिता ने कम-से-कम मुझे जन्म देकर कोई ग़लती नहीं की।"

एकाएक सरोज के अधर हिल उठे। कमल-नयन खिल

उठे। मुस्कराते हुए उसने कह दिया—"क्या मुझे क्षमा नहीं करोगे ?"

"सरोज, मैंने तो अब तक यही समझा है कि सच्ची क्षमा अपनी आत्मा से मिलती है।"

"तो मैं अपनी आत्मा से ही तो क्षमा माँग रही हूँ।"

"तो मैं अपने को क्षमा करता हूँ।"

एक कल-हास उस सरोज-कक्ष में गूँज उठा।

इतने में कमलेश्वरी के पास आ पहुँचा हेम। बोला—"सरोज नहीं दिखलायी पड़ रही है।"

कमलेश्वरी ने पीढ़ा डाल दिया। अब वर्षा की बूँदें थम गई थीं। हेम पीढ़ा पर न बैठकर खड़े-ही-खड़े बोला—"मैंने सुना था कि कल सरोज की तबियत कुछ ख़राब हो गई थी !"

कमलेश्वनी केतली में बटलोई का गर्म पानी डालती हुई बोली—"तुत बैठो तो सही। तुम्हें मालूम नहीं—प्रेम आया है।"

सुनकर हेम पुलकित हो उठा। बोला—"अच्छा, प्रेम आया है। गुड ! मगर है कहाँ ?"

कमलेश्वरी हँसते-हँसते बोली—"ऊपर है।"

हेम ने पूछा—"चाची, तुम हँसी क्यों ?"

कमलेश्वरी ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, यों ही।"

असली बात उसने टाल दी थी। उसके मन में आया था, कह दे—"प्रेम को भी खोजना पड़ता है ?" पर हेम से ऐसी बात वह कैसे कह सकती थी।

इतने में सुरेश आ पहुँचा।

कमलेश्वरी बोली—"लो चाय बन गई।"

सुरेश ने हाथ में ट्रे लेते हुए कह दिया—"चाय तो बन गई, अब वाय का क्या होगा ?"

कमलेश्वरी ने एक थाली के ऊपर से तौलिया का एक कोना उठाते हुए उत्तर दिया—"वाय यह रही। इसे तुम लेते जाओ हेम। चले जाओ ऊपर धड़धड़ाते हुए। सुरेश तो तुम्हारे साथ ही जा रहा है—संकोच की क्या बात है ?"

दोनों जब सरोज के कक्ष-द्वार पर पड़े हुए परदे के निकट पहुँचे तो सरोज कह रही थी—"जाओ, तुम बड़े वह हो !"

—:o:—

१०

जाह्नवी को कभी-कभी इलाहाबाद भी जाना ही पड़ता था। माँ अब नहीं रही थीं, लेकिन भाई और भाभी तो थे ही। कभी कानपुर रहते-रहते जी ऊब जाता, कभी भाभी का पत्र आता—"जीजी, इस बार तो बहुत दिन हो गए। अब आओ न ?"

जाह्नवी का मन तो वहाँ जाने का बहुत होता: क्योंकि एक तो हेम वहाँ पढ़ता था, दूसरे भाभियों के बीच में दस-पाँच दिन जो रहती, तो एक नया संसार पाकर उसे बड़ी प्रसन्नता होती। भतीजे छोटे-छोटे थे। उनका आपस में झगड़ना और फिर साथ बैठकर खेलना उसे बहुत प्यारा लगता था। लेकिन क्षेम कानपुर में पढ़ने लगा था। इसके सिवा-जाने आने में व्यय भी तो होता था। विद्यालय की नौकरी छूट गयी थी। उषा, शकुन्तला आदि दो-चार लड़कियाँ आ जाती थीं। उन्हीं से सौ रुपये के लगभग मासिक आय हो जाती थी। कुछ सिलाई भी वह कर लेती थी। इस प्रकार निर्वाह भर हो हो रहा था। बहुत दिनों तक तो यही आशा बनी रही, कहीं-न-कहीं फिर नौकरी मिल जायगी। किन्तु जब लड़कियों ने जोर डालना शुरू किया—'अब कहाँ जाओगी

दीदी—गुरु माँजी, मैं संकोच के मारे कुछ कहती नहीं कि आप कहीं अन्यथा न समझ लें। नहीं तो अम्मा कहती थीं—मैं हज़ार रुपये लगा दूँगी। अपनी गुरु माँजी से कहना, किसी प्रकार मकान के नीचेवाला कमरा खाली हो जाय, तो किराये पर ले लें। मशीन और अलमारियाँ, टेबिलें और बैठने की कुरसियाँ आदि लेने की जरूरत पड़ेगी, उसका खर्चा मैं दे दूँगी।"

जाह्नवी इन बातों को सुनती, तो उसका हृदय हिल जाता। जीवन के नाना रूपों, मानसिक संघर्षों, प्रतिक्रियाओं, निहित स्वार्थों के वीभत्स रूपान्तरों और अन्तर्हित मन्तव्यों के विविध प्रकारों की ओर उसकी दृष्टि सजग बनी ही रहती थी।

एक दिन इलाहाबाद से भाभी का पत्र आ गया—"जीजी बस अब आ ही जाओ। राकेश का मुंडन है। ऐसे अवसर पर तुम्हारा आना बहुत ज़रूरी है।" इसी पत्र में नीचे हेम ने लिख दिया था—"अम्मा, अब सर्दी पड़ने लगी है। हमारे जाड़े के कपड़े संग लेती आना।"

यह पत्र एक पुस्तक में रखकर आया था और पुस्तक अंग्रेजी की थी। उसका विषय था—'बच्चे अपराध क्यों करते हैं?' पुस्तक उसने शकुन्तला को भेजी थी। जाह्नवी ने जब चिट्ठी पढ़ी, तो एकदम उसके होठों से मुसकराहट फूट निकली। उसे अपने वे दिन याद आ गये जब पास-पड़ोस के समवयस्क भाई-भतीजे मुक्त भाव से कह दिया करते थे—"यह रिबन तुम्हारे केशों में बहुत अच्छा लगता है।"—"यह

सैंडिल तुमने कितने में ख़रीदा ?"

उस समय जाह्नवी की दृष्टि में इन वाक्यों का कोई विशेष मूल्य नहीं होता था; किन्तु जीवन ज्यों ज्यों आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसे बहुतेरी ऐसी नई बातों का ज्ञान होता गया कि वेष-भूषा, मुद्रा, अलंकरण, स्वभाव, रहन-सहन का ढंग, चलना, उठना-बैठना, पलँग का चादर, रजाई की शैली, तकिये का आवरण, मकान, कमरे की सजावट आदि को लेकर समीप वय के लोग जब कोई अभ्यर्थना, प्रशंसा और अनुकूल रुचि का अभिमत प्रकट करते हैं—और ऐसे लोग यदि प्रतिकूल योनि के होते हैं—तो उनका मनोभाव प्रकारान्तर से एक यौनि-जन्य मोहन प्रकट करता है। उदाहरणवत् जैसे रजनी नाम की कोई लड़की है। वय में चाहे दस या ग्यारह की हो, कामजन्य चेतना से सर्वथा शून्य, सरल और भोली; और लड़का बारह-चौदह का हो। संयोगेन उससे कहने लगे—"तुमको यह मफ़लर बहुत सोहता है, तो उसके इस अभिमत का एक अर्थ होगा। साधारण रूप से आपस में बैठने-उठनेवाले लोग कह ही दिया करते हैं —"तुम्हारे इन हाथों में यह हरी-हरी चूड़ियाँ बहुत अच्छी लगती हैं।···यह साड़ी तुमने कहाँ से ख़रीदी है ? बहुत फबती है तुम्हारे बदन पर।" और "यह चश्मा तो तुम्हारे मुख पर चार-चांद लगा देता है।" इन वाक्यों में ऊपर से केवल वस्तु-संगति प्रकट करने की ही भावना होती है; किन्तु इस के मूल में एक प्रच्छन्न मोहन होता है। जिसका अर्थ है प्यारा लगना।

आज प्रथम बार जाह्नवी को कुछ ऐसा ही संदेह हेम के

विषय में हो उठा। शकुन्तला को उसने एक पुस्तक पढ़ने के लिए भेजी है। कहने के लिये वह केवल एक उपहार है। पर इसी स्थल पर प्रश्न उठता है कि कोई किसी को उपहार क्यों देता है?

उस दिन शनिवार था। अभी दिन के चार बजे थे। जाह्नवी ने निश्चय कर लिया कि उसे इलाहाबाद जाना है। क्षेम अभी स्कूल से आया नहीं था और शकुन्तला जा चुकी थी। यकायक उसके मन में आया—'हेम पूछेगा—'अम्मा, शकुन्तला के लिये मैंने एक पुस्तक भेजी थी। पुस्तक पाकर कुछ कहती थी?' ऐसे समय मैं उसे क्या उत्तर दूँगी?' अतः उसने सोचा ऐसी स्थिति में मैं आज इलाहाबाद नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त जो लड़कियाँ पढ़ने के लिये उसके पास आती थीं, उनको इस बात की सूचना भी देनी थी कि मैं दो-चार दिन के लिए बाहर जारही हूँ।

'अब क्षेम आने ही वाला है।' जाह्नवी की आँखें बारम्बार द्वार की ओर उठ जाती थीं।

इतने में सहसा किवाड़ की कुण्डी खटकी। जाह्नवी ने पूछा—"कौन?"

एक प्रौढ़ पुरुष कण्ठ ने उत्तर दिया—"मैं हूँ परमेश्वरी लाल।"

एक बार जाह्नवी के मन में आया—'इस समय और कोई घर में नहीं है। क्या उत्तर दूँ?' जब और कुछ न सूझा तब उसने द्वार की ओट में आकर उत्तर दिया—"भाई साहब, इस समय थोड़ी असुविधा है मुझे। बच्चे घर में नहीं हैं और

मैं भी खाना बनाने जा रही हूं। अ ऽ आपको कष्ट तो होगा--फिर किसी समय आने की कृपा करें।"

परमेश्वरी बाबू ने उत्तर दिया—"मैं क्षेम को लेकर आया हूँ। कई लड़कों के साथ वह पैदल आ रहा था। भीड़ बहुत थी सड़क पर। और इस ओर से उस ओर जाना तो बहुत ही कठिन था। मैं अपने कालेज से लौट रहा था। मैंने देखा कि एक ओर पुस्तकें बिखरी पड़ी हैं। दो तीन तो नाली में जा गिरी थीं। क्षेम रिक्शे और साइकिल के बीच में आ गया था। कोई खास चोट तो नहीं आयी है। बायें हाथ में अलबत्ता थोड़ी खरोंच आ गयी है और घुटना फूट गया है। थोड़ा रक्त भी गिरा है।"

जाह्नवी एकदम से घबरा गई। झट उसने किवाड़ खोल दिये। क्षेम सामने आ गया।

जाह्नवी ने देखा, सचमुच गाँठ फूट गई है। उसकी धुक-धुकी तीव्र हो उठी। बोली—"और तो कहीं चोट नहीं आई?"

क्षेम ने उत्तर दिया—"आज तो नहीं आयी, पर इसी प्रकार आ सकती है। आज भी तुम्हारे प्यार ने बचा लिया है। नहीं तो चोट लगने में कोई कसर थोड़े ही रह गई थी अम्मा!"

"तुम अपने साथ के लड़कों से अलग हो गये होगे? या हो सकता है इधर-उधर देखने लगे हो।"

"नहीं अम्मा, हम कई लड़के साथ ही थे। सड़क के इस पार से उस पार हो रहे थे। हमारे सामने रिक्शेवाला था

और पीछे सायकिलवाला। अकस्मात् हम बीच में फँस गये।"

परमेश्वरी बाबू अब तक चुपचाप खड़े थे। जाह्नवी बोली—"चलिये भाई साहब, भीतर बैठिये।" फिर मूल विषय पर आकर बोली—"जब भी कभी ध्यान इधर-उधर हो जायगा, पहले से ही संकट की कल्पना करके सावधान न होगे, तो संकटों से अवश्य घिर जाओगे।" फिर परमेश्वरी बाबू की ओर देखती हुई जाह्नवी कुछ लज्जित हो उठी। अभी थोड़ी देर पहले उसने द्वार खोलने में भी असुविधा प्रकट की थी। क्योंकि परमेश्वरी को वह अन्दर नहीं बुलाना चाहती थी।

फिर झटपट वह अन्दर जाकर मरहम उठा लाई।

उसके मन के भीतर एक द्वन्द्व चल रहा था—'जिस आदमी को अन्दर बुलाने में उसे संकोच हो रहा था, उसी को अब भीतर बैठालने में न किसी प्रकार का संकोच है न आपत्ति। क्षण भर के इस अन्तर को अनुभव करती हुई वह भीतर-ही-भीतर विघूर्णन करने वाली ग्लानि से विवर्ण हो उठी। वह सोचने लगी—'मनुष्य के स्वार्थ की यह कैसी क्रूर अपरूप नग्नता है ?'

फिर उसने क्षेम की घबराहट शान्त करने की चेष्टा की। बोली—"आदमी कुछ भी कहे—कुछ भी करता रहे, संकट के क्षण जीवन में आ ही जाते हैं। रक्षा होने को होती है तो इसी प्रकार हो जाती है।

इतने में परमेश्वरी बाबू बोले—'मुझे अब आज्ञा ही न दीजिये ? मैं भी अभी कालेज से आ रहा हूँ। क्षेम को इस

दशा में देखा, तो जी न माना। सोचा—भेज ही आऊँ।"

"तो क्या हुआ ? खतरे की घड़ी से छुड़ाकर आप क्षेम को अपने साथ लिवा लाये हैं। और अब दो-चार मिनट बैठेंगे भी नहीं ? इसका क्या मतलब है ? यों बिना किसी कार्य के तो आप कभी आते नहीं।"

परमेश्वरी ने उत्तर में यह नहीं कहा कि अभी तो आपको किवाड़ खोलने में ही असुविधा हो रही थी, अब अन्दर बैठालने में भी आपत्ति नहीं है। वे जानते थे कि परिचय होने के बाद अनेक वर्ष बीत चुके हैं। मेरे मन के मोहों में भी अन्तर पड़ गया है। व्यर्थ की सम्भावनाओं से दूर-ही-दूर रहने में कुशल है। रुचियों में परिष्कार, प्रवृत्तियों में गम्भीरता और प्रकृति की मायाविनी प्रयोगशीलता में भी अपेक्षाकृत अन्तर पड़ गया है। किन्तु इसकी स्वभावगत दृढ़ता टस से मस नहीं हुई।

'जब यह इंटर-कालेज में अध्यापिका थी उस समय शारीरिक सौंदर्य भी कहीं अधिक ज्वलन्त था। दृष्टि पड़ते ही एक लालसा मन में उभर उठती थी। उचितानुचित की चेतना तो बाद में उठती थी। वह एक अलग प्रश्न था। वेष-भूषा में भी बड़ी स्वच्छता और सुरुचि की झलक मिलती थी। अब वह बात भी नहीं रही। फिर भी परसम्पर्क से अपने आपको सदा बचाये रखने की निष्ठा-विधा में कोई अन्तर नहीं आया है। क्या इसका यह अर्थ नहीं कि वह स्वयं अपने आपको आकर्षणहीन नहीं मानती। स्वयम् अपने में ही अब तक निरवच्छिन्न बनी रहना चाहती है।

परमेश्वरीलाल यह भी जानते थे कि वह आजकल घर पर ही कई लड़कियों को पढ़ाती और कपड़े सिलाई का काम करती है। महरी को छुड़ा दिया। पहले तीन कमरों में रहती थी अब एकमात्र यही कमरा रह गया है। न पहले जैसी सुविधायें प्राप्त हैं, न जीवन-यापन में कोई उत्साह रह गया है। किसी तरह जीना है, इसलिए जी रही है। सरिता वही बनी है, लेकिन वह धारा कहां है ?—धारा में जो एक अटूट वेग रहता है कि भारी-से-भारी पत्थर भी लुढ़कते जाते हैं, उसका अस्तित्व तो कहीं दिखलायी नहीं पड़ता। फिर भी अवरोध बना है, नियंत्रण स्थिर है, अश्व में जो स्थिति लगाम की होती है, वही इसके मन की है।

अन्त में एक निःश्वास को दबाते हुए, परमेश्वरीलाल सोचने लगे—'और तो सब ठीक है किन्तु इस नारी में दुःख-सहन की अद्भुत शक्ति है।'

फिर बिना बोले न रह सके और उन्होंने कह दिया—"जैसी स्थिति में मैं इधर आपको देख रहा हूँ, नहीं कह सकता क्यों वह मुझसे सहन नहीं हो रही। हृदय चीरकर तो मैं कुछ दिखला नहीं सकता। लेकिन इतना कह सकता हूँ कि अगर आप मुझ पर विश्वास कर सकतीं तो मैं आपको यह कष्ट कदापि न होने देता।"

जाह्नवी के घर में ऐसे अवसर के लिये प्राथमिक चिकित्सा की यथेष्ट सामग्री बनी रहती थी। अब उसके स्थान पर एक मरहम मात्र रह गया है। वही क्षेम की गाँठ पर लगाकर उस पर पट्टी बाँध रही थी। और क्षेम कह रहा था—"अम्मा,

आज मुझे फिर बाबू की याद हो आई । वे अगर बने होते तो क्या हम ऐसे संकट में पड़ जाते ? सवारी के लिए वे क्या कोई व्यवस्था न करते ?"

क्षेम की बात सुनते ही जाह्नवी की आँखें भर आयीं। उसने उत्तर दिया—"बेटा; शायद तुमको यह बात नहीं मालूम कि जिन बच्चों का पालन-पोषण संकटों के बीच में होता है, वे अगर बुद्धिमान् और धीर-वीर प्रकृति के होते हैं तो भविष्य में अतिशय सुख और समृद्धि के भागी बनते हैं । भगवान जब उनको ऐसी कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण कर देता है, तब उसे वैसा ही पद भी दिला देता है । करुणामय की आँखें सदा खुली रहती हैं । वे सब देखते रहते हैं । कभी यह मत सोचना कि बाबू बने होते, तभी तुम बड़े बन सकते थे । वे नहीं हैं, तो क्या हुआ ? बाबू के बाबू परम-पिता का हाथ तो तुम्हारे सिर पर सदा बना रहेगा । बाबू के न रहने से क्या बनता-बिगड़ता है !

इस कथन के बाद पट्टी में गाँठ लगाती-लगाती वह परमेश्वरीबाबू को लक्ष्य करती हुई बोली—"आपको बुरा तो न मानना चाहिये भाई साहब । क्योंकि मेरी स्थितियों से आप परिचित हैं। जितनी कृपा आपकी मेरे ऊपर रहती है यही बहुत है । यद्यपि इसका कोई प्रतिदान मेरे पास नहीं है ।"

कथन के बाद जाह्नवी साबुन से हाथ धोने लगी । क्षेम लोटा उठाकर स्नानागार की ओर चल दिया ।

परमेश्वरीलाल अब भी खड़े थे । जाह्नवी बोली—"मगर आप खड़े क्यों हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता । बैठ

जाइये। चारपाई पर बैठने में असुविधा हो तो कुर्सी ले लीजिये।"

परमेश्वरीलाल कुर्सी पर बैठते हुए बोले—"यहीं आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं। मैंने एक तो कुछ आपके लिये किया नहीं; यद्यपि कर इसलिये नहीं पाया कि आप सदा ऐसे प्रसंगों में अरुचि और अस्वीकृति की ही भावना व्यक्त करती रही हैं। नहीं कह सकता कि यह व्यवहार मेरे ही साथ है, अथवा सारे समाज के साथ। मैं तो अपनी बात जानता हूँ। मुझे सदा ऐसा भान होता रहा है कि किसी का भी सहयोग आपने कभी स्वीकार नहीं किया। थोड़े से भी आदान को आपने अतिशत अनुरोध के साथ अंगीकार किया है। और यह तो आप मानेंगी कि एक ही ओर का अनुरोध स्थायी सम्बन्ध की दूरी को समेटने में बहुधा कम सहायक होता है।"

अब जाह्नवी हँस पड़ी। तौलिये से हाथ सुखाकर उसने जलते स्टोव पर केटली चढ़ा दी।

परमेश्वरीलाल की दृष्टि जाह्नवी के केशों की ओर लगी हुई थी, जिनमें अब एकाध श्वेत हो चले थे। मुखश्री में भी थोड़ा-सा अन्तर पड़ गया था। उन्हें कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे फूल गुलाब का अवश्य है; किन्तु वृन्तच्छिन्न हुए बिना ही, बिना तोड़े मुरझा गया है। दलों में न अब वैसी मोहक लाली रही है, न मृदुलता। कुछ दल तो सर्वथा सूख गये हैं।—यहाँ तक कि एक ही पवन-झकोरे से धूल में मिल जा सकते हैं। जीवन की अतुल समृद्धि का उपयोगहीन यह विनाश कितना निर्मम—

कैसा अपरूप और दयनीय है !

फिर इस विचार के साथ उनके मनमें आया—'और भी एक बात है। टहनी में जो काँटे हैं, वे भी सूख गये हैं और सूखा हुआ काँटा हरे काँटों की अपेक्षा अधिक दृढ़ होता है। पुष्प सूखकर टहनी से गिर ही पड़े, यह तो बात ही दूसरी है। किन्तु यदि वह कभी तोड़ा नहीं गया, तो किसी-न-किसी स्थल पर उसका चुभ जाना निश्चित है। यह बात दूसरी है कि वह हाथ की अँगुली में चुभे, या धोती को ही छेदकर फाड़ डाले।

इसी क्षण जाह्नवी बोली—"भाई साहब, यह अतिशय अनुरोध की बात कहकर आपने मुझे द्विविधा में डाल दिया है। प्रश्न यह है कि कोई व्यक्ति कृपा के विषय में—सहायता के नाम पर—उपकार के माध्यम से—एक हाथ से हार्दिकता, सेवा और दूसरे हाथ से श्रीसमृद्धि भेंट करने का कष्ट करता ही क्यों है ?"

"केवल एक सक्रिय मानवता की भावना से। लोभ से विरत—मोह से परे—मनुष्य की एक ऐसी स्थिति भी तो होती है, जब वह किसी के लिए कुछ करना ही चाहता है।"

"पर अगर आप बुरा न मानें तो मैं कहना चाहूँगी कि आज के युग में मैं सक्रिय मानवता की नैतिकता पर विश्वास नहीं करती। मैंने स्वयं अपने जीवन में अनुभव किया है कि लोग उपकार करते हैं। इसलिये नहीं कि उपकार किये बिना उनकी खाई रोटी हजम नहीं होती। इस लियेभी नहीं कि उपकार किये बिना वह रह ही नहीं सकते।वरन इसलिए कि हर उपकार

के पीछे वह मन-ही-मन एक अनाहूत प्रतिदान की आशा रखते हैं। और क्षमा कीजियेगा, जो व्यक्ति उपकार का नाम लेकर किसी प्रतिदान की आशा से पीछे दौड़ता है, वह उपकार का पेशा करता है, उसकी कमायी खाता है!"

जाह्नवी कथन के प्रकार में कुछ ऐसी प्रखर आविष्ट हो उठी कि एक छूटी अलक के साथ उसका अपलक मुख समधिक अरुण परम ज्योतिर्मय हो उठा।

परमेश्वरीलाल की आँखें खुल गयीं। वे एकदम तिलमिला उठे और बोले—"यहाँ पर आप मेरे साथ और भी अधिक अन्याय कर रही हैं।"

केटली का गर्म पानी अब उबलने लगा था। ढक्कन की रन्ध्रियों से भाप का ऊपर उठता हुआ धुआँ स्पष्ट प्रतीत होता था।

परमेश्वरी बाबू का इतना कहना था कि जाह्नवी ने तुरन्त पीछे मुड़कर कोने में रखा हुआ एक ट्रंक खोला और कई काग़ज़ों के बीच पन्नों पर पन्ने उलटते-उलटते अपने ससुर के नाम आया हुआ, लगभग बीस वर्ष पूर्व लिखित, एक पत्र निकालकर परमेश्वरी बाबू के सामने रखते हुए कह दिया—पिछली बार जब मैं इलाहाबाद गयी थी, तभी पुराने कागज़ों के बीच सहसा यह पत्र मेरे हाथ में पड़ गया।

सर्वथा जर्जर हो रहे इस पत्र में कुछ शब्द लाल पेंसिल से रेखांकित कर दिये गये थे।···लिखा हुआ था—"लड़के का नाम है परमेश्वरीलाल। पढ़ा-लिखा सुन्दर और सुशील। विवाह सुविधा से तै हो जायगा। मैंने ज्ञानेश्वरीप्रसाद से चर्चा

की थी। उनका कहना है कि दस हज़ार में वे इसको स्वीकार कर लेंगे।"

यह पत्र जाह्नवी के पिता के एक मित्र सुन्दरलाल के हाथ का लिखा हुआ था। इस पत्र को पढ़कर परमेश्वरीलाल का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। वह उनके हाथ से वहीं गिर गया। एक भी शब्द उनके मुँह से न निकल सका।

तब सहसा अवाक्, जड़, स्तब्ध होकर, वे कुर्सी से उठे और कमरे के बाहर चल दिये।

अभी वे आँगन तक पहुंचे होंगे कि जाह्नवी बोल उठी—"बैठिये-बैठिये परमेश्वरी बाबू। कम-से-कम चाय तो पीते जाइये!"

किन्तु फिर परमेश्वरीलाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। अवसन्न और मौन दग्ध होकर वे लौट गये।

—:o:—

११

क्षेम को लेकर जाह्नवी जो इलाहाबाद जा पहुँची तो वहाँ हेम के सम्बन्ध में कुछ नयी बातें सुनने और कुछ नये अनुभव प्राप्त करने का भी उसे अवसर मिला। भतीजे के मुंडन संस्कार के अवसर पर भाई की ओर से स्वागत-सत्कार और भेंट-उपहार में हेम और क्षेम के लिए कपड़े प्राप्त कर वह बहुत उत्साहित हो उठी।

चारपाई बिछी हुई थी। बदन को दुलाई से ढके हुए हेम कह रहा था—"अम्मा, मैं अपना यहाँ का खर्चा तो किसी तरह चला ही लेता हूं। सबसे अधिक कठिनाई मेरे सामने यह रहती है कि एक-एक विषय पर पाठ्य विषय-सम्बन्धी दस-दस पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं। खरीदने की स्थिति यह है कि हमारे प्रेम और महेश जैसे साथी भी उन्हें खरीद नहीं सकते। पन्द्रह-बीस रुपये से कम की तो कोई पुस्तक ही नहीं है।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"क्या मेरी पढ़ी हुई पुस्तकें अब काम नहीं देतीं ?"

हेम बोला—"अम्मा, सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ युग भी तो सदा आगे बढ़ता रहता है। सगे भाई-बहन की

तरह दोनों आपस में संघर्ष किया करते हैं। जैसे सभ्यता के रूपों में विकास हुआ है, काल के चरण आगे बढ़े है; वैसे ही युग की प्रवृत्तियों के मान और वस्तुस्थितियों के मूल्यांकन भी बदले हैं। जीवन को सतत उन्नतिशील बनाने के लिए नाना प्रकार के प्रयोग जो नित्य होते रहते हैं उनकी आलोचना के प्रकार और दृष्टिकोण भी बदले है। पूँजीवादी समाज ने मनुष्य की मेधाशक्ति को हस्तगत करने की जो अमोघ और अचूक चेष्टायें की हैं, आज का बुद्धिजीवी वर्ग उनके संघर्ष में पूरी तरह संलग्न और एक सीमा तक तो निर्मम भी हो उठा है। आपने देखा ही होगा कि राष्ट्र के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् हमारी नैतिकता का स्तर कितना गिर गया है! किन्तु समय के प्रवाह के साथ जब मनुष्य चल नहीं पाता, बढ़ नहीं पाता और सतत एक गत्यवरोध उसे स्थिर-स्तब्ध बना देता है, तभी प्रतिभा के बन्द कपाट जैसे आप से आप खुल जाते हैं वैसे ही प्राण होमकर मनुष्य अपनी रक्षा भी करता है। और यह तो तुम जानती ही हो कि जो नैतिकता हमारे प्रकृत विकास को अपनाने, उसके परिपालन और परिपोषण में सहायक नहीं होती—मनुष्य की मेधा शक्ति उसे उच्छिष्ट मान लेती है।"

जाह्नवी ने अनुभव किया कि हेम का बौद्धिक स्तर निस्संदेह खाइयाँ और सीमाएँ पार कर रहा है। वह ऊँचा उठ रहा है। उसने यह भी अनुभव किया कि यह विकास-चेतना उसने कहीं से उधार नहीं ली। वरन् शृंखलाबद्ध विवश जीवन के प्राणान्तक विस्फूर्जन और क्रांतिमुखी आत्म

निष्ठा से ही ग्रहण की है। तब वह पुलकित होकर बोली—"तुम्हारी पुस्तक प्राप्तकर शकुन्तला ने भी यही बात कही थी।"

कथन के बाद जाह्नवी ने जो हेम के मुख पर दृष्टि डाली तो वह क्या देखती है कि वह हर्ष और उत्साह से विह्वल हो उठा है।

हेम ने कह दिया—"क्या कह रही थी अम्मा ?"

"कह रही थी—दीदी—मगर दीदी क्यों ?—तुम तो मेरी माँ हो न ! माना कि शरीर का पालन नहीं किया, लेकिन बुद्धि और विवेक का तो किया ही है। अम्मा कहा करती हैं—मेरी शकुन बिलकुल जाह्नवी देवी के चरण-चिह्नों पर चल रही है।"

"अच्छा, ऐसा कह रही थी ! और क्या कह रही थी ?"

जाह्नवी ने अनुभव किया कि हेम मुझसे सब कुछ जान लेना चाहता है। तब उसे उसका बचपन याद हो आया। जब उसने पूछा था—'अम्मा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मृत्यु कभी आये ही नहीं ? क्या उसको हम जीत नहीं सकते ?'

उसने बतलाया वह किंचित मुसकराती हुई बोली थी—"दद्दा इलाहाबाद जाकर भी मुझे भूले नहीं। बिलकुल मेरी रुचि के अनुकूलपुस्तक भेजी हैं। अच्छा दीदी, वे कब तक आयेंगे ? बहुत दिनों से उन्हें देखा नहीं। जी लगा रहता है।"

इस बार हेम ने कोई प्रश्न नहीं किया। आश्चर्य के साथ यह भी नहीं कहा—"अच्छा, ऐसा कहती थी !"

जाह्नवी ने देखा कि वह विचार में पड़ गया है। तभी कुर्सी

से उठ कर वह खड़ी होती हुई बोल उठी—"मैं तो यहाँ आ कर बड़े फेर में पड़ गयी हूँ हेम।

हेम ने पूछा—"क्यों, क्या बात है ?"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"यह तो तुम जानते ही हो कि मानवता कभी निष्क्रिय नहीं होती। इसीलिये कोई आदान-प्रदान, भेंट और उपहार निष्फल नहीं जाता। मनुष्य अगर किसी के लिए कुछ करता है तो उसका प्रतिदान अवश्यम्भावी हो जाता है। मैंने सेविंग बैंक से सिर्फ़ बीस रुपये निकाले थे और यहाँ भाभी ने तुम्हारे और क्षेम के लिए कितना खर्चकर डाला है! मैं सोचती थी कि अगर कुछ रुपये मेरे पास और होते तो यहाँ इस अवसर पर मैं एक दिन गीत-मांगल्य ही करा डालती।"

हेम मुसकराने लगा—"वाह अम्मा, यह तो तुमने बड़ी अच्छी बात सोची!" और इतना कह कर उसने चारपाई से उठकर अपनी गरम सदरी उठाई और पर्स निकालकर जाह्नवी के सामने रख दिया।

—"ले लो न ?"

जाह्नवी हँसने लगी। बोली—"अच्छा, अब तो तेरे पास कुछ पैसे भी रहने लगे हैं!"

पर्स उठाकर उसने देखा कि सौ रुपये के एक नोट के साथ फुटकर दो रुपये और दस नये पैसे हैं। तब वह हर्ष-गद्गद होकर उछल पड़ी। बोली—"कहाँ से पा गया यह हरा-हरा नोट ?"

हेम हँसने लगा। जाह्नवी बोल उठी—"बता-बता कहाँ

से मार दिया ?"

इसी समय उसकी भाभी आ पहुँची। एक तश्तरी उसके हाथ में थी, जिसमें घी में भुने हुए नमकीन काजू, हरी ताजी किशमिश और पिश्ते की बरफी रक्खी थी। उसके पीछे क्षेम था—गरम पकौड़ियाँ पीतल की नक़ाशीदार तश्तरी में लिये हुए। उसके पीछे दीपू नाम का लड़का था—ट्रे में चाय लिये हुए।

तभी जाह्नवी हँस पड़ी। बोली—"भाभी, देखती हूँ तुम्हारे पास रहते-रहते हेम भी चोरी सीख गया है।"

भाभी पढ़ी-लिखी थीं। जानती थी कि जाह्नवी की हर बात के अन्तर में एक भेद होता है। अतः विस्मय के साथ बोल उठीं—"ऐसा मत कहो जीजी। हेम कभी ऐसा नहीं कर सकता। रही मेरी बात, सो तुम चाहे जो कहती रहो, मैं कभी बुरा न मानूँगी।"

भाभी की बात सुनकर जाह्नवी गम्भीर होकर बोली—"मैं तो हँसी कर रही थी। यद्यपि उसका भी एक आधार था। तुम अक्सर भैया की जेब टटोला करती थी न? बस इतनी-सी बात थी।" भाभी ने हँसते हुए उत्तर दिया—

"टटोला ही तो करती थी? सो भी यह जानने के लिये कि आज कितनी आमदनी हुई।.....लेकिन इस चाय ने क्या अपराध किया है? इसे क्यों ठंढा कर रहे हो हेम? जीजी, आज एकादशी है। वैसे भी तुम बिना स्नान-पूजन किये कुछ नहीं खाती हो। गरम पानी तैयार ही है, मेरे ख्याल से स्नान कर लेतीं, तो मैं तुम्हारे लिए कुछ फलाहार बनाकर

निश्चिंत हो जाती।"

जाह्नवी ने सौ रुपये का नोट उसके सामने करते हुए कहा—"भाभी, पहले इसको भुना दो। फुटकर रुपये अब मेरे पास रह नहीं गये।"

"क्यों, यहाँ तुमको रुपये की ऐसी क्या ज़रूरत पड़ गयी ?"

"वाह ! जरूरत क्यों न पड़ेगी ? मैं चाहती हूँ कि आज मेरी ओर से गीत-मांगल्य हो जाय।"

"क्यों, कल जो कुछ होना था हो तो गया ?"

"अभी कैसे हो गया है ? आज मेरी ओर से होगा। जिस-जिसको बुलाना हो, व्यवस्था कर दो। और पाँच रुपये के नुक्ती के लड्डू मँगवा लो।"

"नहीं, मैं तुम्हें कष्ट नहीं देना चाहती।"

"तुम्हें नहीं मालूम कि कभी-कभी किसी कष्ट का मुख उस बालक का सा होता है जिसकी नाक सूँढ़ की सी होती है और जिसका शुभ नाम होता है—श्रीगणेश। मतलब यह कि कुछ कष्ट मनुष्य अपने आनन्द के लिये जानबूझ कर मोल लेता है, उसके पीछे एक उल्लास और आनन्द की पृष्ठभूमि होती है। उसे कष्ट नहीं, जीवन-सौख्य का एक प्रतीक मानते हैं।"

"जीजी तुमसे तो बात करना मुश्किल है। तुम्हारे हर उत्तर के पीछे एक नीति-कथन और हर प्रश्न के पीछे एक प्रवचन, जाड़े की रातों में दुलाई से मुँह ढके हुए, चुपचाप पड़ा रहता है।"

कथन के बाद नोट लिये हुए भाभी चली गयीं। तभी क्षेम बोल उठा—"अम्मा तुम्हें एक बात नहीं मालूम और भैया की तो ऐसी आदत है कि वे अपने मन से कभी कुछ बतलाते नहीं।"

हेम हँस पड़ा और बोला—"अब उसमें बतलाने की क्या बात रह गई है। एक पत्र के द्वारा पहेली-प्रतियोगिता में अम्मा मुझे डेढ़-सौ रुपये मिल गये थे। उसी में से यह सौ रुपये बचे हुए हैं।"

इधर यह बातें चल रहीं थी। उधर प्रेम आ पहुँचा। हेम बोल उठा—"अम्मा, यही मेरा वह बाल-बन्धु है जिसका मैंने रात को तुमसे ज़िक्र किया था।"

प्रेम ने आगे बढ़ जाह्नवी के चरणों की रज मस्तक से लगा ली।

जाह्नवी ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"जियो जियो और अमर बनो।"

प्रेम ने कहा—"माता जी मैंने कल ही हेम से सुना था कि आप आई हुई हैं। पर कल मुझे अपने चुनाव के सिलसिले में कुछ हिसाब-किताब करना था। इसलिए फिर मैं आ नहीं सका। यद्यपि रात को लेटे-लेटे मैं यही सोचता था कि ऐसे समय मुझे अपने इस काम को एक दिन के लिये टाल देना चाहिये था। क्योंकि आपका आशीर्वाद लेने की एक बड़ी कामना मैं अपने हृदय में बहुत दिनों से सँजोये हुए था। हेम तो मेरा सगा भाई सा है। बड़ा भाई। पैदा उसे तुमने किया है, लेकिन उसकी सारी आत्मीयता का दान मुझे मिला है। उसका सहारा

न मिलता तो मैं इस चुनाव में किसी प्रकार सफल नहीं हो सकता था।"

जाह्नवी बोली—"बैठो-बैठो, चाय पियो। मैं अभी आती हूं।"

इतना कहकर जाह्नवी चली गई। क्षेम ने चाय का प्याला सामने करते हुए कहा—"बातों-बातों में यों भी काफ़ी देर हो गई है। इसलिये कृपा करके आप पी ही डालिये।" और हेम की ओर उन्मुख होते हुए उसने पूछा—दद्दा, आज मैंने एक बात सुनी है। मगर सुनी क्यों है, मैं स्वयं सोचता हूं कि ऐसा हो सकता है। वैसे मुझसे कहा किसी ने नहीं है।"

आश्चर्य के साथ हेम ने पूछा—"कौन-सी बात ?"

क्षेम ने उत्तर दिया—"इधर कई दिनों से शकुन्तला की माँ—महालक्ष्मी देवी—अम्मा से मिलने के लिए नित्य आया करती हैं। कभी-कभी तो उनकी मोटर में बैठकर अम्मा उनकी कोठी पर भी जाती हैं। आजकल वे एक विद्यामन्दिर बनवा रही हैं। अगली जुलाई तक वह तैयार हो जायगा। मैं सोचता हूँ कि उनके इस आयोजन में एक बात छुपी हुई है।"

हेम प्रसन्नता के साथ बोला—"हो सकता है। मगर अभी इस विषय में किसी से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। एक तुर्की कहावत है—अनुभव उस अमूल्य कंघे के समान है जो किसी-किसी को उस समय मिलता है जब उसके सिर के बाल झड़ जाते हैं। मल्लिका देवी को इस ससय ऐसे ही एक कंघे की आवश्यकता थी भी।"

इसी समय दीपू दूसरी तश्तरी में गरमागरम पकौड़ियां

पुनः लेकर आ पहुँचा। और क्षेम ने कहा—"और भी एक बात हुई है दद्दा। मल्लिका की हठ चल नहीं सकी। शाल्मली देवी को भी अन्त में त्यागपत्र देना ही पड़ा।"

"मुझे इस बात को सुनकर दुःख हुआ। वास्तव में अम्मा का सारा झगड़ा मल्लिका देवी के साथ था। शाल्मली देवी को तो उन्होंने अपना अस्त्र बना रक्खा था।"

इतने में प्रेम पकौड़ी मुँह में डालते हुए बोला—"तुम तो अपना कार्य पूरा करके अध्ययन में डूब गये। अब सारी प्रतिक्रिया और उसके खट्टे-मीठे परिणाम मुझे भोगने पड़ रहे हैं।"

"क्यों फिर क्या इधर कोई नयी बात हुई ?"

"बातें धीरे-धीरे सामने आही जाती हैं। शारदा कह रहा था—इस सफलता का सारा श्रेय हेम को है। निर्वाचन के समय यकायक जो महेश का सिर चकरा गया और विवश हो कर वह जो तुम्हारे साथ जा मिला, उसकी पृष्ठ-भूमि में हेम का मुख्य हाथ है।"

"पर इस रहस्य का भेद कैसे खुला ?"

"भेद खोला स्वयं शारदाप्रसाद ने। उसी ने पूर्णचन्द्र से साफ़-साफ़ कह दिया—प्रेम को खड़ा किया मैंने, जब कि वह इसके लिए बिल्कुल तत्पर न था। फिर महेश को प्रभावित करने के लिये हेम को अपने में मिलाया भी मैंने; क्योंकि चाणक्य की सी नीति उसके सिवा और किसी को आती भी नहीं है। फिर भी जब मैंने देखा कि अब ऐसे अवसर पर महेश ने अगर खुलकर साथ न दिया, तो हो सकता है नाव

बीच धार में ही डूब जाय ! संयोग से तुम्हारे पास महेश की जो कहानी पड़ी हुई थी, फोटोग्राफ के साथ ऐन चुनाव के दिन—प्रातःकाल—तुम्हें मालूम ही है—'स्वर्ण प्रभात' में प्रकाशित करवायी भी मैंने। इसी का यह परिणाम हुआ कि महेश का सारा द्वेष और अहंकार धूल में मिल गया। तुम्हें मालूम ही है, आँखों में आँसू भरे हुए वह हम लोगों के पास कैसी गम्भीर घड़ियों में आ पहुँचा था। मुझे वह क्षण कभी नहीं भूल सकता, जब उसने कहा था—"भाई मुझे क्षमा कर दो। भूल मेरी ही है। असल में मुझे भवानीशंकर ने बहका दिया था। कुछ हो, इतना मैं सहर्ष और अभिमान के साथ कहूँगा कि हजार नादान दोस्तों की अपेक्षा एक दाना दोस्त हज़ार गुना अच्छा होता है। अब स्थिति यह है कि छात्र-संघ के अस्सी प्रतिशत व्यक्ति हमारे दल में आ गये हैं।"

हेम चुपचाप सब सुन रहा था। सारी स्थितियाँ अब पुरानी पड़ गयी थीं। इसलिये उनको सुनने में कोई आकर्षण न था। बारम्बार उसे शकुन का स्मरण आ रहा था। तभी जाह्नवी ने आकर कह दिया—"बेटा प्रेम, मुझे आने में थोड़ी देर हो गयी। भाभी कह रही है—"प्रेम से कह दो, वह आज खाना यहीं खाये।"

फिर वह हेम के निकट जाकर उसे अस्सी रुपये वापस करती हुई बोली—"बीस रुपये मैंने रख लिये हैं। मैं कानपुर पहुँचते ही भेज दूँगी।"

रुपये लेते हुए हेम ने कह दिया—"अम्मा ये रुपये पुरस्कार के हैं। यों भी मैंने तुम्हारे श्री चरणों पर चढ़ाने के लिये रख

छोड़े थे। संयोग की बात कि तुमने स्वयं ही ऐसा अवसर दे दिया। इसलिये इन्हें वापस करने की आवश्यवता नहीं है।"

प्रेम को इस पुरस्कार की बात मालूम थी। अतः वह इसी समय बोल उठा—"कदाचित इसी क्षण के लिए लावेल ने कहा था—"हृदय की विशालता ही मनुष्य को महान बनाती है। अतएव महान बनो। तुम देखोगे कि अन्य व्यक्तियों में पनपने वाली महानता आपसे आप तुम्हारी सहायता के लिए उठ खड़ी होगी।"

जाह्नवी को हेम के मित्र प्रेमकी यह सुसंगति बड़ी प्यारी लग रही थी। आज प्रातःकाल से ही उसे बारम्बर स्वामी का स्मरण आ रहा था। अतः उसने कह दिया—"तुम्हारे बाबू भी अक्सर यही बात कहा करते थे। एक दिन जब मैं भयानक ज्वर से आक्रान्त थी, कभी-कभी अचेत तक हो जाती थी। उसी समय उन्होंने कमरे में चारों ओर दीपक जला दिये। सहसा जब मेरी आँख खुली, तो वे बोल उठे—"इन दीपकों की ओर दृष्टि डालो। ये तुम्हें निरन्तर जगने की प्रेरणा देंगे। कभी मत सोचो कि अँधेरा आनेवाला है। ये एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे, दृष्टि की प्रत्येक गति के साथ तुम्हें सतत जागृत मिलेंगे। इनकी बाती का स्नेह कभी चुकनेवाला नहीं। ये उस ज्योतिर्मय के प्रतीक हैं, जो सदा जागृत रहता है। तुम्हारी तबियत अभी ठीक हो जायेगी। तुम जियोगी और तुम्हें जीवन की सारी परिपूर्णता प्राप्त हो कर रहेगी। स्नेह के सतत आलोक में, हृदय की विशालता में, निरन्तर महासागर के दुर्निवार तरंग-ज्वार में।"

कथन के क्षण यकायक उसकी आँखें भर आयीं। तुरन्त आँसू पोंछते हुए उसने कह दिया—"जब-जब तुम्हारे क्षेम-कुशल जीवन की सफलता के अवसर आते हैं, तब-तब उनकी यह अमर वाणी स्मरण हो आती है। ऐसा प्रतीत होता है, रुग्णावस्था में वे सामने खड़े हुए कह रहे हैं—"इन दीपकों की ओर देखो, ये निरन्तर तुम्हें जागने की प्रेरणा देंगे। ये सदा जाग्रत रहते हैं। इनके स्नेह की बाती·····!"

कि सहसा फिर उसका कण्ठ भर आया।

हेम बोल उठा—"अम्मा, तुमने तो वचन दिया था कि मैं अब कभी नहीं रोऊँगी; फिर भी बाबू का स्मरण कर तुम रोने लगती हो।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"बेटा ये उस आनन्द के आँसू हैं, जो तेरी सफलता की पावन घड़ियों में सहसा उनका स्मरण दिला देते हैं। इन्हें संसार की कोई शक्ति कभी रोक नहीं सकती। जैसे संसार की गति निरन्तर है, वैसे ही आनन्द और सौख्य के आंसू भी। वे निरन्तर निकलेंगे, बहेंगे और बहते रहेंगे।"

—:o:—

१२

कई दिनों से भवानीबाबू की खाँसी बढ़ी हुई थी। कभी-कभी खाँसते-खाँसते रात-की-रात बीत जाती। यहाँ तक कि सोना दुष्कर हो जाता। राधेगोविन्द सी० ओ० डी० में नौकर हो गया था। उसकी दुलहिन घर में थी अवश्य, पर अब उसको अपने बच्चों की ही देख-रेख से अवकाश न मिलता था। सत्यवती का विवाह हो गया था, पर उस समय वह घर में ही थी। वनलता विवाह के योग्य हो गई थी, पर उसके लिए कहीं बर ठीक नहीं हो रहा था। विश्वनाथ अभी पढ़ रहा था।

दुर्गा रात-दिन इसी चिन्ता में रहती कि कहीं से कोई रक़म हाथ लगे, तो सोने के झूमर बनवा लूँ। इयरिंग उसके पास अवश्य थे, पर अब सभ्यता इतनी आगे बढ़ गई थी कि इयरिंग पहनना ग्रामीणता समझी जाने लगी थी। विमाता की सन्तानों के साथ यों भी उसका अनुराग न था। फिर अब तो वे सब मिलकर रात-दिन झगड़ते रहते थे। भवानीबाबू कभी-कभी उन्हें समझाने का यत्न करते, पर अब उनका बल इतना घट गया था कि कोई उनकी बात सुनता न था। उन्होंने एक प्रकार से यह समझ लिया था कि अब मुझे अधिक दिनों

तक नहीं चलना है। कभी-कभी जब खाँसी का वेग बढ़ जाता, तब कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि अब प्राण आज निकलें, या कल। अधिक की आशा नहीं है।

जब तक जीवन के प्रति आशा रहती है, तभी तक उसका मोह भी रहता है। जब जीवन-नैया मझधार में पड़कर डूबने लगती है, तब निराशावस्था में जीवन भर के सारे पाप-पुण्य स्वप्न बनकर, सामने आ-आकर, अपना-अपना क्रन्दन और हाहारव, नाना उपालम्भों और प्रतिक्रियाओं के रूप में, प्रकट करने लगते हैं। बीती बातों को भूलकर वह न्याय की एक विकारहीन निष्ठा सँजोना प्रारम्भ कर देता है।

चारपाई कई दिनों से कसी नहीं गई थी और पैताने की रस्सी कुछ ढीली पड़ गई थी। बिस्तर की चादर बदली नहीं गई थी और तकिया का आवरण तो इतना चीकट हो गया था कि उससे दुर्गन्ध फूटने लगी थी। कहीं उसके निकट इधर-उधर दवाइयों के नुसखे तथा पुड़ियों के कागज़ पड़े रहते, कभी दूध के गिलास में मक्खियाँ भिनकती रहतीं। कभी दोपहर हो जाती और नहाने के लिए गरम पानी न मिल पाता, कभी चारपाई के नीचे सफ़ाई न होती। भवानीबाबू पड़े-पड़े बड़बड़ाया करते। कोई उनकी बातों पर ध्यान ही न देता था।

एक दिन दुर्गा ने पास आकर कह दिया—"कुछ सुना तुमने ?"

"क्या ?" भवानी बाबू ने पूछा।

दुर्गा ने उत्तर दिया—"बड़े कह रहे हैं— हम यहाँ से चले जायँगे। हमने दूसरी जगह मकान ले लिया है।"

भवानी बाबू वर्षों से इस बात की कल्पना कर रहे थे। जब कभी महीना समाप्त होने लगता, वे यही सोचने लगते—बड़े ने कुछ कहा नहीं! अतएव आज जब दुर्गा ने ऐसी सूचना दी, तब उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। एक निःश्वास मात्र लेकर उन्होंने पूछा—"तुमने क्या उत्तर दिया?"

दुर्गा ने हाथ का कंगन घुमाते हुए कहा—"मैंने तो यही कह दिया कि अपने बाबू से कहो, मुझसे क्या कहते हो?"

"तब वह क्या बोला?"

"यही कहने लगा—उनसे कहने का साहस नहीं होता। किस मुख से कहूँ, समझ में नहीं आता।"

भवानीबाबू की आँखों में आँसू छलछला आये। आर्द्र कण्ठ से बोले—"और कुछ नहीं कहा उसने?"

"और तो कुछ नहीं कहा।"

"और तुमने भी नहीं कहा कि फिर हमारा निर्वाह कैसे होगा?"

"मैं यह बात उससे नहीं कह सकती। उस पर मेरा ऐसा कोई दावा भी नहीं हो सकता।"

"हूँ, तो यह बात है। मतलब यह कि तुम स्वयं चाहती हो कि वह अलग हो जाय। न उसके साथ तुम्हारी कोई ममता है न बहू के साथ। क्यों?"

"चाहे जो कह सकते हो। मुझे कोई शिकायत न होगी। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि घर में जब खाने को होगा, मैं भी खा लूँगी। न होगा, भूखी पड़ी रहूँगी।"

"और बच्चों के खाने-पीने का क्या प्रबन्ध होगा?"

"मैं क्या जानू ? मुझसे क्या पूछते हो ? सत्यवती अलबत्ता कह रही थी कि मैं तो भैया के साथ ही रहूँगी। यह मेरा अधिकार है। कोई इसके लिये मुझसे कुछ नहीं कह सकता।"

"इस विषय में तुम्हारी क्या राय है ?"

"मैंने पहले ही कह दिया कि मेरी कोई राय नहीं है।"

"अच्छी बात है। उससे कहना—मुझसे मिल ले। मैं बुरा न मानूँगा।" कहकर भवानी बाबू चुप हो रहे।

सायंकाल हुआ। सभी बच्चे एकत्र होकर अपने-अपने ढंग से चुहल करने लगे। विश्वनाथ भवानी बाबू के पास चुपचाप आ खड़ा हुआ। बिजली की बत्ती जल रही थी और कढ़ाई चढ़ाये दुर्गा सरसों का साग छौंक रही थी। सत्यवती मन-ही-मन गुनगुना रही थी—

'नन्ही-नन्ही बूँदन बदरा बरसे, अँगना की तुलसी झुराय—पिया नहीं आये !"

बड़े का बच्चा अर्जुन बिसकिट के लिए मचल रहा था और उसकी छोटी बहिन उसे बिसकिट देना नहीं चाहती थी। वनलता अर्जुन के लिए स्वेटर बुन रही थी।

भवानीबाबू बोले—"क्या है विस्सू ?"

विश्वनाथ ने उत्तर दिया—"बड़े भैया आ गये।"

यही बतलाने के लिए वह यहाँ आया था।

भवानीबाबू बोले—"आया है, अभी हारा-थका होगा। इतमीनान से बैठेगा। फिर निवृत्त होकर खाना खायेगा। ऐसी कोई जल्दी तो है नहीं। तुम्हारा भी तो भाई ही है। चला जायगा, तो तुम्हें बुरा न लगेगा ?

विश्वनाथ यह बात जानता था। उसे स्वयं ही बुरा लग रहा था कि सारे घर में एकमात्र ऐसा भाई है, जो सारा खर्चा चला रहा है। और वही आज अलग हो रहा है। पर उसके मन में घबराहट किसी तरह न थी। यही लगता था कि ऐसे समय अगर प्रेम भैया होते, तो बड़ा अच्छा होता।

बस, यह बात उसके मन में आई थी कि झट वह दुर्गा के पास जाकर बोला—"अम्मा मैंने एक बात सोची है। कहो कहूँ, कहो न कहूँ।"

दुर्गा ने उत्तर दिया—"इस बखत मेरा जी ठिकाने नहीं है। कोई ऊट-पटाँग या चिन्ता में डालने वाली बात हो, तो न कहना ही अच्छा है।"

"नहीं अम्मा, ऐसी सुन्दर बात है कि तुम सुनोगी, तो मेरी पीठ ठोके बिना न मानोगी।"

दुर्गा सरसों के साग को करछली से उलटती-पुलटती बोली—"ज़रा ठहर जा। मैं अभी सुनती हूँ।"

राधेगोविन्द ने प्रातःकाल दुर्गा से अपना मन्तव्य कह तो दिया था, पर इस समय इसी प्रश्न को लेकर उसका चित्त कुछ खिन्न हो रहा था। सबसे बड़ी चिन्ता उसे भवानीबाबू की थी। पर वह अपनी पत्नी के मारे परेशान था। वही दिन-रात इस प्रश्न को लेकर उसकी पीठ पर छूरा भोंकती रहती थी।

दुर्गा बोली—"हाँ बोल, क्या बात है?"

विश्वनाथ पीढ़ा डालकर वहीं बैठ गया। बोला—कुल एक रुपये का खर्च है। मैं प्रेमभैया को तार दिये देता हूँ। कल सवेरे वे यहीं दिखलाई पड़ेंगे। यकायक उनके आ जाने

से बड़े भैया की सिट्टी भूल जायगी। और भाभी की नानी अगर न मर जाय, तो मेरा नाम विश्वनाथ नहीं नागनाथ रख देना !"

दुर्गा का चेहरा खिल उठा। मुसकराती हुई बोली—"चल मेरे साथ, मैं रुपया अभी देती हूँ। अभी किसी से कुछ चर्चा न करना, भला।"

विश्वनाथ उछलता हुआ सीटी बजाने लगा।

सत्यवती का गीत अभी तक पूर्ववत् चल रहा था—

—अँगना की तुलसी झुराय, पिया नहीं आये।"

महेश को जब से प्रेम के आगे झुकना पड़ा था, तब से उसका मन गिर गया था। मिलता-जुलता वह अवश्य था, पर एक प्रकार का दर्प जो उसके भीतर रहता था, वह अब मर गया था। कहने के लिए बहुतेरी बातें थीं। संतोष भी वह कभी-कभी कर ही लेता था। पर विश्व-विद्यालय का सारा वातावरण उसे काटता रहता था।

सबसे अधिक चिढ़ उसे प्रेम से ही थी। वह कभी कल्पना भी नहीं करता था कि उसे शारदा और हेम जैसे—कहने को बुद्धिवादी, पर वास्तव में—उसकी समझ में धूर्त—लोगों का ऐसा शक्तिशाली सहयोग मिल जायगा।

कुछ तो उसे अपने ऊपर भी क्षोभ होता था—'इतना भी वह न समझ सका कि मुझे मात देने के लिए यह शह दी जा रही है।

इधर कुछ नयी बातें भी उत्पन्न हो गयी थीं। शारदा ने उसे एक दिन खूब खरी खोटी सुना दीं। प्रसंग कुछ इस प्रकार उठा कि कहीं महेश के मुँह से निकल गया—घर का भेदी लंका दाह।

शारदा उस समय रेस्तोराँ में बैठा खीरक़दम उड़ा रहा था। महेश की बात सुनते ही बोल उठा—"क्या कहा, फिर तो कहना !"

महेश ने उत्तर दिया—"जो कुछ होना था, हो चुका। अब कहने से कोई लाभ नहीं।"

शारदा बोल उठा—"हां, लाभ तो सचमुच नहीं है। जो आदमी मित्र को एक सुन्दर अवसर मिलने की घड़ियों में अपनी ऐसी विघातक जलन का परिचय देता है, मैं उसे काला नाग समझता हूँ।—मैं पूछता हूँ, ऐसी कौनसी बात थी, जो तुमने सहयोग के बदले असहयोग की नीति का प्रयोग करना उचित समझा? केवल इतनी बात तो थी कि उसने तुमसे पहले से परामर्श नहीं किया था? अच्छा, नहीं किया था परामर्श, तो फिर क्या हुआ ? इससे तुम्हारी मर्यादा को कहाँ आघात लगा ? क्या इसका यह अभिप्राय नहीं होता कि जो व्यक्ति तुमसे सलाह लिये बिना कोई काम तुम्हारे भरोसे पर कर उठाये, वह तुम्हारा मित्र हो ही नहीं सकता ? अच्छा तो सलाह कर लेना इतनी बड़ी चीज़ हो गयी कि भरोसा करने का कोई महत्व नहीं रह गया ?"

"बेकार में बड़-बड़ कर रहे हो।" महेश ने मुँह बनाकर उत्तर दिया—"तुम्हें कुछ मालूम भी है ? परचे का वक्तव्य

किसने लिखा था ?"

"परचे का वक्तव्य तुमने तब लिखा था, जब प्रेम स्वयं तुम्हारे पैरों गिरा था। यह भी तुम्हारी नीचता की पराकाष्ठा थी; अन्यथा यह कार्य तो तुम्हें खुले दिल से करना चाहिये था। फिर मैं पूछता हूँ, उसके निवेदकों में तुमने अपना नाम क्यों नहीं दिया ? क्या इसके अन्दर यह भावना छिपी हुई न थी कि तुम मतदाताओं में एक भ्रम बनाये रखना चाहते थे ? तुम चाहते थे कि अन्त तक लोग यही सोचते रह जायँ कि कुछ तो बात होगी। आखिर महेश ने इस दल के साथ सहयोग क्यों नहीं किया ?

"लेकिन अन्त में सारी बातों पर परदा डालकर पूरे दल बल के साथ मैंने अगर प्रेम का साथ न दिया होता, तो वह कभी कृतकार्य हो न सकता था। और काम निकल जाने के बाद यह कहने में क्या लगता है कि इतने बड़े बहुमत के साथ मुझे विजय प्राप्त हुई !"

"हूँ, सारी बातों पर परदा डालकर ! तुम्हें यह कहते हुए लाज नहीं आयी ? किस मनोवैज्ञानिक युक्ति के कारण तुम्हारा मस्तक झुक गया, क्यों तुम स्वयं आँखों में आँसू भरे हुए प्रेम के पास जाने को विवश हुए और क्यों अपनी कुटिलता, द्वेष-भावना और कायरता के लिए तुमने उससे क्षमा माँगी, इसका सारा रहस्य मुझे मालूम है। कहो तो उसकी भी बखिया उधेड़ दूँ ? मुझे बड़ा आश्चर्य है कि अब भी तुम अपने आप को एक सुसभ्य और शिक्षित समझने का पाखण्ड लिये फिरते हो। तुम्हारी अपेक्षा वे लोग कहीं अच्छे हैं, जो प्रतिहिंसा की

भावना से यदि कभी हत्या कर डालते हैं, तो छाती ठोंककर कारागार की सज़ा भी सहर्ष भोग आते हैं। तुम्हारी भाँति किसी बन्धु के साथ प्रवंचना तो कभी नहीं करते।"

शारदा का इतना कहना था कि महेश चुपचाप बिना कुछ कहे, उठकर चल दिया।

इस घटना का फल उसके कुछ इतने विरोध में चला गया कि धीरे-धीरे सारे विश्व-विद्यालय में इसकी चर्चा होने लगी। जो मिलता, वह इन्हीं प्रश्नों का समाधान चाहने लगता।—"मैंने सुना है—प्रेम के साथ तुम्हारा कुछ मनोमालिन्य होगया। बुरी बात है। मैं कभी तुमसे ऐसी आशा नहीं करता था।—"अरे भई महेश, वो मैंने एक बात सुनी है। पता नहीं कहाँ तक सही है। हो सकता है, प्रारम्भ में उसी के द्वारा कोई छोटी-मोटी भूल हो गई हो। यह भी हो सकता है कि उसे तुम्हारे अन्तर्मन की स्थिति का ज्ञान न हो। पर यह तो कोई बात न हुई कि तुमने अगर उसे पहले से निमंत्रण नहीं दिया, तो तुम उसके विवाह के अवसर पर केवल इसीलिए सम्मिलित न होगे कि पहले से क्यों नहीं बतलाया! जबकि पाणिग्रहण संस्कार के दिन वह स्वयं तुम्हें गाड़ी लेकर लेने चला आया।"—"हलो महेश, हाऊ-डू-यू-डू। और कहो कि गल? हाँ, अच्छी याद आयी। तुम्हारी एक कहानी मैंने किसी पत्र में देखी थी। भाषा अच्छी लिख लेते हो, मगर कहानी और चीज़ होती है। माफ़ करना। आलोचना के समय मैं शिष्टाचार निभाना ज़रा कम जानता हूं। मगर फिर यह भी किसी ने बतलाया कि इस कथा के प्रकाशन के पीछे कोई रहस्य भी है। जो भी हो।

तुम्हें प्रेम के साथ ऐसा व्यवहार करना न चाहिए था।"

नित्य इस प्रकार की बातें सुनते-सुनते महेश थक गया। वह चाहता, तो प्रेम या हेम से मिलकर इस वातावरण को सहज ही शान्त कर सकता था। पर ज्यों-ज्यों ये बातें उसके कानों में पड़तीं, त्यों-त्यों वह मन-ही-मन और भी क्षुब्ध हो उठता।

इस दशा में उसका अध्ययन कैसे पूरा होता? परिणाम यह हुआ कि अन्त में महेश परीक्षा किसी तरह देकर भाग खड़ा हुआ।

परमेश्वरीलाल को उसकी इस स्थिति का बिल्कुल पता न था। महेश ने उनको कोई सूचना भी न दी। चुपचाप वह अपनी ससुराल (बरेली) चला गया। उसके बाद एक दिन पता चला, वह नौकर हो गया है। परमेश्वरीलाल सोचते ही रहे, वह अब आता है, अब आता है। पर वह आता-आता अन्त में सीधा बरेली से देहरादून जा पहुँचा।

वहाँ नियोजन-विभाग में उसे नौकरी मिली थी। परमेश्वरीलाल का तार उसकी मेज पर पड़ा था। पत्नी ने पूछा—

"इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बहनोई घर में ठहरा हुआ है। न जाओगे, तो अम्मा बुरा न मानेंगी?"

महेश ने मुँह बनाकर उत्तर दिया—"जाने को कहो चला जाऊँ, पर आते देर नहीं हुई, साहब कहेंगे—अभी से छुट्टी माँगने लगा। फिर साथ में तुमको भी ले जाना पड़ेगा। कुछ खर्चे का प्रश्न भी है। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं

आता।"

पत्नी ने उत्तर दिया—"अम्मा के साथ रहना मुझे है। सरोज के साथ ननद का घनिष्ट नाता भी निभाना मुझे है। बाबू का प्रश्न अलग है। मेरे विचार से तुम्हें जाना चाहिये।"

महेश को सारी बातें स्वीकार थीं। पर वह प्रेम के सामने जाने से झिझकता था। उसे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो मेरा अपमान भूत बनकर सिर पर सवार हो गया ए। मैं सर्वथा असहाय हो गया हूँ। कोई भी मेरे मन की व्यथा नहीं समझ रहा है।

स्वामी को मौन देखकर पत्नी फिर बोल उठी—"जो कुछ निश्चय करना हो, जल्दी करो। तुम्हारे लिये वे रुके तो रहेंगे नहीं। फिर अगर उस समय पहुँचे भी, जब वे विदा होने को तत्पर मिले, तब किस-किस को उत्तर दोगे और दुनिया क्या कहेगी?"

महेश ने तार का उत्तर दे दिया—"खेद है, छुट्टी नहीं मिल रही है। प्रेम को मेरा बहुत-बहुत अभिवादन।"

—:o:—

१३

परमेश्वरी को अब कुछ भी अच्छा न लगता था। उसका मन बुझ गया था। उसने कभी कल्पना भी न की थी कि जाह्नवी मेरे प्रेम को कलुष समझ बैठेगी।

वह दिन-रात उन परिस्थितियों पर विचार करता रहता, जिनके कारण जाह्नवी ने उसका तिरस्कार किया। वह अपने आपसे पूछने लगता—'क्या वास्तव में उसने मेरा तिरस्कार किया है?' फिर वह अपने-आप से ही लड़ने लगता—'यदि उसके हृदय में मेरे प्रति प्रेम की कोई भावना नहीं है, तो वह मुझसे बोलती ही क्यों है? स्पष्ट क्यों नहीं कह देती कि आप यहाँ मत आया कीजिये! मुझसे मिलने की आपको कोई आवश्यकता नहीं!' फिर इसके विपरीत वह स्वयं सोचने लगता—'प्रेम न होने की परिस्थिति में मनुष्य के हृदय में विरक्ति का जन्म होता है। उसकी अग्नि यदि एक बार बुझ जाय, तो फिर वह बड़ी कठिनाई से जलती है। अगर जाह्नवी के हृदय का प्रेम, उसकी अग्नि, उसकी तपन, बुझ गयी है, तब वह जीती क्यों है?'—'पर एक बात हो सकती है—वह जीती है केवल हेम और क्षेम को लेकर!

उसका प्रेम केवल सन्तान-पालन में रूपान्तरित हो गया है। हो सकता है कि जिस प्रेम की अग्नि वासनामयी होती है वह उसमें रह ही न गया हो! स्वामी की मृत्यु के पश्चात् वासना भी एकदम से मर गयी हो। पर शरीर-धर्म के प्रति यह विरक्ति और एकान्तनिष्ठा उसी व्यक्ति में हो सकती है जो तपस्वी होता है।···एक बात और है कि यह दृढ़ता और कट्टरता तो वास्तव में संस्कृति की देन है, सभ्यता के विकास के लिए इसका जन्म हुआ था। इसका उद्देश्य था विश्व-कल्याण। मैं यह नहीं मानता कि पुरुष हो या स्त्री, पति या पत्नी के मर जाने पर फिर उसमें वासना रह ही नहीं जाती। मैं वासनाहीन प्रेम पर विश्वास नहीं करता। प्रेम की कट्टरता को भी मैं एक प्रकार की वासना ही समझता हूँ।'

कुछ दिन तक तो परमेश्वरी को अपनी दिनचर्या में भी विशेष रुचि और प्रीति नहीं रह गयी थी। मन एकान्त-चिंतन में निरन्तर लीन रहने लगा था। कालेज से लौटने के बाद, बड़े उत्साह के साथ वह कमलेश्वरी से पूछा करता—'क्या बनाने जा रही हो?' किन्तु अब घर के अन्दर आने की इच्छा ही न होती थी।

एक दिन सुरेश ने आकर पूछा—"बाबू, अम्मा कहती हैं "चिल्ले बनायें, खाओगे?"

परमेश्वरी ने विरक्ति के साथ उत्तर दिया—"यह सब मुझसे मत पूछा करो। जो मन में आये सो बनाये।"

सुरेश चला गया।

उन्हीं दिनों की बात है। प्रेम दुबारा आया हुआ था। यकायक

मन में एक ज्योति-सी जल उठी।—'यह भी खूब रहा। जो प्रेम मेरे सिर की पीड़ा का विषय बन गया है, वही आज मेरे घर में उपस्थित है।' फिर उसका ध्यान अपनी दिनचर्या की आन्तरिकता पर चला गया।—'मुझसे तो यह कमलेश्वरी ही भली।' मन-ही-मन वह मुस्कराने लगा।

इतने में आ पहुँचा तार का जवाब। पढ़कर एक बार खीझ उठा।—एक दम से उल्लू हैं सब के सब। इस महेश को मैं अपना समझता था। और अब इसका मेरे प्रति ऐसा कुटिल व्यवहार है! फिर वह सोचने लगा—ऐसा कुछ तो नहीं है कि बहू यहाँ से असतुष्ट होकर गयी हो? कमलेश्वरी ने उसे कभी झिड़क दिया हो—कोई कटु बात कह दी हो!'

वह झट कमलेश्वरी के पास जा पहुँचा। बोला—"तुमसे कभी बहू से कुछ कहा-सुनी तो नहीं हुई? किसी बात को लेकर—किसी भी प्रसंग में?"

कमलेश्वरी बोली—"नहीं तो। वह जब यहाँ से जाने लगी थी, तब उसकी आंखों में आँसू छलछला आये थे। भगवान करे, ऐसी बहू सबको मिले। पर आज यह बात कैसे उठी तुम्हारे मन में?"

परमेश्वरी बोला—"महेश का जवाब आ गया तार से। उसे छुट्टी नहीं मिली।' तभी मन में आया—'कहीं बहू का मन तो इधर तुम्हारे किसी व्यवहार से दुखी नहीं है? खैर मैं सब समझ रहा हूं।"

फिर उसे ध्यान आ गया—'परीक्षा के दिनों से लेकर वह बाहर ही बाहर रहा है। आया भी है तो एक निश्चित

कार्यक्रम के अनुसार—सिर्फ़ एकाध दिन के लिए। फिर तुरंत चला गया है। हेम कह रहा था कि वह तीसरी श्रेणी में पास हुआ है। इसने यह बात भी मुझसे छिपायी।—हेम कह रहा था—'वह दलबंदी में पड़कर मुझसे मनोमालिन्य रखने लगा है। प्रेम को भी उसने धोखा दिया था।—'हूँ तो यह बात है! लेकिन इसने तार में लिखा है कि छुट्टी नहीं मिली। जब इसके मन में इतना राग-द्वेष है, तब ऐसा भी तो हो सकता है कि इसने जान-बूझकर छुट्टी माँगी ही न हो। किन्तु यह है बहुत चतुर। तीसरी श्रेणी में पास होने पर भी न जाने कहाँ से प्रयत्न कर-कराकर नौकरी पा ही गया। लोग तो वर्षों चक्कर काटते हैं; फिर भी नौकरी नहीं लगती।

'वह सोचता भी खूब है। बाबू कुछ न कहें, इसीलिए उसने झट दूसरा मार्ग पकड़ लिया है। अच्छा, माना कि वह प्रेम से अपने आत्मीय सम्बन्ध तोड़ बैठा है, किन्तु फिर बहू को क्या हो गया? इस परिस्थिति को कैसे सहन किया उसने? अगर उसने ठीक तरह समझाया होता, तो ऐसा होना कभी सम्भव न था।

'लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है कि उसने बहुत समझाया हो, फिर भी महेश ने न माना हो। क्योंकि हठी तो वह बचपन से है।'

उसी दिन की बात है। बाज़ार से कुछ सामग्री लानी थी, स्वयं न जाकर उसने यह कार्य सुरेश से लिया था। जो धोती-जोड़ा बाजार में सोलह रुपये में मिलता था, सुरेश उसे अठारह रुपये में ले आया था।

परमेश्वरी ने पूछा—"पर्चा कहाँ है ?"

सुरेश बिना किसी हिचक के कहने लगा—"पर्चा !" और कथन के साथ वह अपनी जेब टटोलने लगा। कुछ काग़ज़ भी निकाले, देखे। जब पर्चा नहीं मिला, तो कह दिया—"इस वक्त नहीं मिल रहा है। फिर खोजकर दे दूंगा।"

परमेश्वरी को कुछ संदेह हो उठा। उसने पूछा—"हमारे गाँव के दुलारेलाल पाण्डेय की जो दूकान जनरलगंज में है, वहीं से लाये हो ?"

सुरेश ने उत्तर दिया—"नहीं।"

"तो तुम उल्लू हो। तुमने उनकी दूकान देखी नहीं है ?"

सुरेश बोला—"उनकी दूकान में यह जोड़ा था ही नहीं।"

परमेश्वरी ने कह दिया—"तो फिर पर्चा ढूँढ़कर अभी दिखलाओ। अगर न मिले तो दूसरा बनवा लाओ। किस दूकान से लाये थे ?"

सुरेश ने उत्तर दिया—"कैलकटा-क्लाथ-स्टोर से।"

"खैर, पर्चा ढूँढो जाकर। अभी दे जाओ मुझको।"

दो दिन बीत गये। परमेश्वरी ने कई बार टोंका। अन्त में सुरेश को स्पष्ट रूप से कह देना पड़ा कि पर्चा कहीं खो गया है।

एक दिन परमेश्वरी संयोग से उस कमरे में जा पहुँचा जिसमें बबूल की लकड़ी के सूखे डंडे गँजे हुए थे। उसको कुछ

संदेह हो उठा। काग़ज़ के कई टुकड़े इस ढंग से फटे पड़े हुए थे जिससे सिद्ध होता था कि वे जान-बूझकर फाड़े गये हैं। परमेश्वरी ने उन्हें सावधानी से इकट्ठा किया। फिर उनको इस क्रम से किसी कागज़ पर गोंद की सहायता से चिपकाया कि कलकत्ता-क्लाथ-स्टोर का विधिवत कैशमेमो बन गया। धोती जोड़े का मूल्य उसमें स्पष्ट रूप से दिया था—सोलह रुपये और विक्रय-कर के आठ आने ऊपर से।

अपने घर में ही यह स्थिति देखकर परमेश्वरी के हृदय में आग लग गयी।

सुरेश उस समय कपड़े पहनकर बाहर जा रहा था। यकायक परमेश्वरीबाबू बोल उठे—"ठहरो!" और कथन के साथ ही गर्ज उठे—"परचा मिला?"

सुरेश सकपका गया। सिर नोचा करके धीरे से बोला—"नहीं मिला।"

"तुमको नहीं मिला, लेकिन मुझको मिल गया है। यह देखो, इसको तुम्हीं ने अपने हाथ से फाड़ डाला था। और तुम्हारा ही यह कहना था कि पर्चा मिला नहीं। इसके मूल में यह बात थी कि तुम पर्चा दिखाना नहीं चाहते थे। और दिखाना इसलिये नहीं चाहते थे कि तुम्हारे भीतर चोर था। तुमने बताया था कि धोतीजोड़ा अठारह रुपये में मिला है, जबकि वह विक्रय-कर सहित मिला तुम्हें साढ़े सोलह रुपये में। इस छोटे से काम में भी तुमने डेढ़ रुपया मार दिया। तुम चोर ही नहीं, बेईमान भी हो। पैदा होते ही मर गये होते तो बड़ा अच्छा होता! मैंने तुम्हें पैदा किया है। तुम्हारा

शरीर मेरे रक्त से बना है। मेरा प्राण, मेरे मन का अहंकार, मोह और आकर्षण तुम्हारे भीतर हो तो मुझे आश्चर्य नहीं। पर आश्चर्य तो इस बात का है कि तुम्हारे भीतर यह बेईमानी कैसे उत्पन्न हो गयी ?"

इसी समय कमलेश्वरी बोल उठीं—"तो क्या हो गया ? बच्चा तो तुम्हारा ही है। पैसा कहीं दूसरी जगह तो चला नहीं गया ? किसी दूसरे ने तो ले नहीं लिया ? और खुद जो सैंकड़ों रुपये इधर-उधर लुटाते रहते हो, जिसका भेद तुमने मुझसे सदा छिपाया है, वह क्या है ? वह कपट नहीं है ? इस सम्बन्ध में मैंने कभी चर्चा भी नहीं की। लेकिन इस का यह मतलब तो नहीं है कि मुझे कुछ मालूम नहीं है। सुरेश पर बिगड़ते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ? जाओ, अपना काम देखो ! छोटी-मोटी बातों को लेकर बच्चों को डाँटना उन की नज़रों में स्वयं गिरना है।"

परमेश्वरी के मन पर धक्का तो बहुत लगा, पर उसके पास इस समस्या का एक समाधान भी था। अतएव उसने उसी तीव्रता के साथ उत्तर दिया—"तुम मूर्ख हो। तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि तुम कह क्या रही हो ! तुम वृद्धा हो गयीं, केश सफ़ेद हो चले। मगर तुम इतना भी नहीं समझ सकीं कि हम कगार पर खड़े हैं। किनारा, सरिता के उद्दाम प्रवाह के आघात से जो एक बार कटा, तो धम्म से बीस फीट नीचे जा पड़ेंगे। फिर कौन कह सकता है कि क्या गति होगी ? ऐसे समय बच्चों को जो थोड़ी-बहुत शिक्षा हम देते जायँ, वही उनके लिये हमारी सबसे बड़ी देन होगी। जो दोष हमारे या

तुम्हारे जीवन में हैं, यह आवश्यक तो नहीं कि वही दोष हमारी सन्तान में भी बने रहें। लोग शराब पीते हैं, लेकिन बच्चों को उसकी गंध भी नहीं लगने देते। और गंध चाहे पवन के साथ बाहर चली भी जाय, पर अपनी ओर से उनकी ऐसी चेष्टा अवश्य रहती है कि बच्चे हमारी इस दुर्बलता को जान न पायें। और अगर जान भी पायें, तो प्रत्यक्ष देखने का अवसर तो किसी तरह न पायें। यही स्थिति अन्य दुर्बलताओं की है। लेकिन क्या इसका यह मतलब है कि हम उन पर ध्यान न दें। हमने देखा है और हम निरन्तर अनुभव करते हैं कि प्रत्येक पिता अपनी सन्तान को सदा उन दोषों और अपराधों से मुक्त रखने की चेष्टा करता है जिनमें वह स्वयं लिप्त रहा या रह चुका है।"

परमेश्वरी इसके बाद कहना चाहता था कि इसीलिये हमारी पीढ़ी का सदा यह उद्घोष रहा है कि मैं जो करता हूँ, उसकी ओर मत देखो। देखो उसकी ओर, जो मैं कहता हूँ।

परन्तु कमलेश्वरी ने स्वामी को यह कहने का अवसर नहीं दिया। वह बोल उठीं—"ऐसा नहीं हो सकता। बच्चे वही करते हैं जो अपने घर-द्वार, पास-पड़ोस और इष्ट-मित्रों में देखते हैं। वे तभी सुधर सकते हैं जब उनके माता-पिता स्वयं सुधरे हुए बनें और बनकर दिखायें। उस उपदेश का कोई मूल्य नहीं है जो भीतर से खोखला होता है। असर तो कर्म का पड़ता है, अनुभव का पड़ता हैं—दिखावे का नहीं, उपदेश का भी नहीं। यह बात मेरी अपनी नहीं है। मेरे पिता की बतलायी हुई हैं, जो आज मुझे इस समय याद हो

आयी। वे अब इस संसार में नहीं हैं, लेकिन उनकी यह बात आज भी बनी हुई है और सदा बनी रहेगी। मैंने अभी जो एक बात तुमसे कही थी और जिसके लिए तुमने मुझे मूर्ख बना डाला था, वह मुझे कहनी नहीं चाहिये थी। मानती हूँ; उसके लिये मुझे दुख है। आशा है तुम उसका बुरा नहीं मानोगे और मुझे क्षमा कर दोगे।"

पत्नी की बात सुनकर परमेश्वरी हत-प्रभ हो उठा। उसके पास इसका कोई उत्तर न था। चुपचाप, स्तब्ध-मौन वह द्वार की ओर चल दिया। उसका अन्तःकरण पुकार-पुकार कर कह रहा था—'मूर्ख कमलेश्वरी नहीं, मैं स्वयं हूँ।'

यह एक दूसरा आघात था। इसकी इतनी भयानक प्रतिक्रिया हुई कि जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण सदा के लिए बदल गया।

तार पाकर प्रेम चिन्तित हो उठा—जान पड़ता है कि बाबू किसी संकट में पड़ गये हैं। यह भी हो सकता है कि बिस्सू ने बड़े भैया से कोई कड़ी बात कह दी हो। यद्यपि बिस्सू से मैं ऐसी आशा तो नहीं करता। पिछली बार जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि पैसे के अभाव में उसका पढ़ना कैसे होगा, तब उसकी पढ़ाई का भार मैंने ले लिया था। उसके बाद फिर आज तक ऐसा कोई विग्रह उत्पन्न नहीं हुआ। पर अब यह क्या बात हो गई ?' उसने अपना होलडाल ठीक किया। सेविंगबैंक में उसका कुछ हिसाब था। अतएव बैंक

खुलते ही उसने पचास रुपये निकाले और तत्काल वह एक रिक्शा लेकर स्टेशन की ओर चल दिया।

रात को जब नौ बज गये और फिर भी राधेगोविन्द, भवानीबाबू के पास नहीं आया, तो उन्होंने उसे बुला भेजा।

राधेगोविन्द अपनी पत्नी के पास बैठा हुआ बच्चों के साथ मन बहला रहा था। इसी समय सत्यवती आकर बोली—"भैया तुमको बाबू याद कर रहे हैं।"

राधेगोविन्द यकायक चिन्ता में पड़ गया—'वही बात कहेंगे जिसकी मुझे आशंका थी। अब ?'

उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। कमरे से बाहर निकलकर जब वह पिता की ओर चलने लगा तो उसके पैर काँप रहे थे। लेकिन वही सारी बातें उसके भीतर एक-एक करके उभर रही थीं, जो उसकी पत्नी ने उससे कही थीं।

—'अम्मा के मन में हमारे लिए कहीं जगह नहीं है। न तुम्हारा सुख उनसे देखा जाता है न इन बच्चों का प्यार। मैं जब कभी उनके लिये कोई चीज़ मँगवाना चाहती हूँ, तो सदा उनका यही उत्तर रहता है कि पैसे नहीं हैं। तुम्हें देख नहीं पड़ता कि ननद कितनी सयानी हो गई है ? अब कैसे उसका ब्याह होगा ? किस तरह गृहस्थी चलती है तुम देखती नहीं और पैसे माँगने के लिए मेरे पास आ खड़ी होती हो।'

—'साड़ी चाहिए, साड़ी चाहिए। मेरे पास चप्पल नहीं हैं, मेरे पास ब्लाउज़ नहीं हैं। मुझे शाल चाहिए, दुशाला चाहिए। तुम्हें चाहिए तो सब कुछ, मगर उसके लिए रक़म भी तो होनी चाहिए पास-पल्ले ! बाप से पूरा दहेज तो

चुकाते नहीं बना और अब यहाँ आकर मुझे शान दिखाने चली है। शान दिखाओ अपने खसम को, जिसके साथ भाँवरें फिरी हैं। शान दिखाओ अपने ससुर को, जो ब्याह पर ब्याह करके बच्चे-पर-बच्चे पैदा करते ही चले गये। मैं किसी की कोरी शान देखनेवाली नहीं हूँ। माना कि तुम्हारे बच्चे हैं, पर बच्चे तो सभी के हैं—और बच्चे सबके एक-से होते हैं। बच्चों के लिये जैसा प्यार तुम्हारा वैसा मेरा। इसमें खास बात क्या हुई? मुझे धौंस दिखाने चली है। आने दो प्रेम को। मैं तुम्हारी सारी करतूतें उसके सामने रख दूँगी। अब की वह पास भर हो जाय फिर नौकरी लगते क्या देर लगती है! मैं खुद तुम्हें अलग कर दूँगी। वह तो एक दिन होना ही है। तुम आज अलग हो जाओ तो भी मैं परवाह न करूँगी।'

भवानीबाबू रजायी ओढे तकियों के सहारे बैठे हुए थे। चारपाई के नीचे मिट्टी के खपड़े में कफ़ पड़ा हुआ था। उसके ऊपर राख डाल दी गई थी। उसके पास ही जूते रखे थे कपड़े के, मैले और फटे। और वहीं दवाई की शीशी पड़ी थी। कार्क कुछ ढीला रह गया था। इसलिए दवा का रस धीरे-धीरे स्रवित हो रहा था।

राधेगोविन्द ने पिता के पास आते ही पूछा—"तबियत तो ठीक है न?"

"आओ, बैठो। अरी सत्या, भैया को बैठने के लिये उसके कमरे से एक कुर्सी तो उठा ला बिटिया।"

विश्वनाथ कुछ ओट में खड़ा था। झट से कुर्सी ले आया

और भवानी बाबू ने कह दिया—"बैठो।" फिर वे धीरे-धीरे बोले—"हाँ, तुमने अभी मेरी तबियत का हाल पूछा। यह बड़ा अच्छा हुआ कि अलग रहकर दूसरा घर बसाने से पहले तुमने मुझसे इतना पूछ तो लिया। मर जाने के बाद यह सब बातें फिर किसी को याद नहीं रहतीं। लेकिन मरण की घड़ियों में अक्सर याद आ जाती हैं। मैं जब मरने लगूँगा उस समय तुम्हारी यह बात याद आयेगी। लेकिन क्या यह बात तुम्हारे पूछने की है? तुम्हें दिखायी नहीं देता कि मेरी तबियत कैसी है!"

राधेगोविन्द सोच रहा था—'माना कि तबियत ठीक नहीं है, और यह भी माना कि अब तबियत क्या ठीक होगी! लेकिन फिर मैं इसके लिए क्या करूँ? जितने दिन जीवन भोग लिया है, क्या वह सब मिलकर यथेष्ट नहीं हुआ? कोई कोर-कसर रह गई है? मेरी समझ में नहीं आता कि जिन्हें मर जाना चाहिये, वे जीवित ही क्यों हैं?'

पर उसने ऐसा कुछ न कहकर मुख्य बात कह दी—"तुमने मुझे बुलाया था। इसलिए मैं आ गया। तबियत का हाल पूछना भी अगर बुरा लगता है तो मैं आगे से न पूछूँगा।"

भवानीबाबू सिर हिलाते हुए बोले—"हूँ, यही ठीक रहेगा। इसी की मैं तुमसे आशा करता हूँ। औरंगज़ेब ने राज्यभोग की लालसा से अपने पिता शाहजहाँ को कारागार में डाल दिया था। वही यह देश है और वही यह धरती है। अन्तर केवल इतना है कि वह संस्कृति विजातीय थी।

"जातीय और विजातीय का इसमें कोई प्रश्न नहीं उठता। हमारी अपनी संस्कृति में भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं—कैकेयीमैया ने अपने पुत्र के राज्य-भोग की लालसा-तृष्णा में पड़कर अपने स्वामी महाराज दशरथ को मर जाने दिया था! आपको इस विषय में और कुछ कहना है?"

भवानीबाबू ने उत्तर दिया—"हाँ, मुझे केवल एक बात कहनी है। जिस अवस्था में मैं तुमको और सत्यवती को तुम्हारे मामा के घर से ले आया था, उसका तुम्हें ज्ञान नहीं है। तुम वह दिन भूल गये, जब चना और बेझर की बासी रोटियाँ नमक के साथ खाया करते थे!"

"मैं कुछ भी नहीं भूला हूँ। मुझे वह दिन आज भी याद आता है। मैं यह भी नहीं भूला हूँ कि यह सब भी तुम्हारी ही देन थी। क्योंकि तुमने मेरी माँ के जीवन-काल में ही दूसरा विवाह कर लिया था।"

"हाँ, कर लिया था। उसका भी एक कारण था। और वह यह था कि तुम्हारी माँ को मेरी माँ का अनुशासन स्वीकार न था।"

"तो अब इस घर में तुम्हारी बहू को अम्मा का कठोर, अमानवीय और वीभत्स अनुशासन स्वीकार नहीं है। जो सदा से होता आया है उसको आप कैसे रोक सकते हैं? जो निरन्तर है, उसे आप कैसे मेट सकते हैं?"

भवानीबाबू बोल उठे—"तो तुम मुझसे बदला ले रहे हो! तुम्हारा अभिप्राय शायद यह है कि तुम मेरा अनुकरण कर रहे हो। पर मुझे कहना यह है कि यहीं तुम ग़लती करते

हो। आज प्रतिहिंसा को तुमने आवश्यक और अनिवार्य मान लिया है। जबकि यह बापू का युग है, जिसमें हिंसा पाप समझी जाती है। और यह क्या बात हुई कि अगर हम गल्ती करें तो तुम भी करो। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि मेरी ग़लतियों से तुम कुछ सीखो। मेरे उपदेशों से कुछ ऐसी शिक्षा ग्रहण करो, जो तुम्हारे मान और गौरव को बढ़ाये। तुम्हारे गौरव से ही मेरा गौरव होगा।"

"बाबू, तुम्हारी इस बात के आगे मेरा सिर झुका हुआ है। लेकिन ऐसा कभी हुआ है? ऐसा कभी हो सकता है? प्रभाव तो कर्म का ही पड़ता है, कोरे कथन और उपदेश का नहीं।"

भवानी बाबू के पास अब राधेगोविन्द के इस कथन का कोई उत्तर न था। वे विचार में पड़ गये।

राधेगोविन्द उठकर खड़ा हो गया। बोला—"मैंने आज एक ज्योतिषी से पूछा था। अभी दो-चार दिन कोई शुभ मुहूर्त बनता नहीं है। सोमवार का दिन ही एक ऐसा है जो मांगलिक और शुभ है। इस सुअवसर पर केवल एक बात मैं कहना चाहता हूँ कि सब कुछ होने पर भी आप मेरे पिता हैं। इस बात का ध्यान मुझे रखना चाहिये और मैं रखूँगा।"

इतना कहकर राधेगोविन्द चला गया।

भवानीबाबू की आँखों में आँसू न थे। हृदय में एक हाहाकार, एक क्रंदन, एक ज्वाला, एक आँधी। और वे सोच रहे थे—'मैं मरने से पहले ही मर गया हूँ। अब इस संसार को मेरी आवश्यकता नहीं रह गयी। मुझे मर जाना चाहिये था!'

१४

शोभा बोली—"दीदी, आपने जो कुछ कहा, वह सब मैं पहले से ही जानती थी। मुझे उलहना केवल इस बात का है कि आप व्यावहारिक नहीं हैं। अपनी यही बात आप क्या मल्लिका देवी से समझा कर नहीं कह सकती थीं ?"

"नहीं कह सकती थी शोभारानी। प्रत्येक व्यक्ति किसी समस्या के समाधान में प्रवचन नहीं देता। उसका उत्तर कथन नहीं होता, कर्म होता है। कोई उत्तर कभी समाधान नहीं होता। जो कथन और समाधान शब्दों का मुख लेकर सामने आता है, वह केवल वाक्यों की सीमा में आबद्ध रहकर समाप्त हो जाता है, वह आकाश के शून्य कलेवर में सदा के लिए निष्पन्न हो जाता है। सच्चा समाधान तो केवल कर्म से ही प्रकट होता है।"

शोभा मुस्कराने लगी। खुले हुए चेस्टर के तीन बटनों में से एक बटन लगाती हुई वह बोली—"यही आपकी अव्यवहारिकता है। आप केवल आदर्श को लेकर चलती हैं। किन्तु आज के युग में आदर्श प्रशंसा और वंदना का नहीं, परिहास का पात्र बन रहा है। लोग आदर्श की हँसी उड़ाया करते हैं। उस हँसी की भी प्रतिक्रिया होती है, यह मैं मानती

हूँ। साधना के बल से, तपस्या के प्रताप से, त्याग और सेवा से, मन, वचन और कर्म की क्षमता से आदर्शों का परिहास दब जाता है; किन्तु फिर आदर्श-निर्वाह का सौख्य व्यक्ति को कहाँ मिल पाता है! आपने ही जो जीवन भोगा है वह कितना दुःखद है! और यह तो आप मानेंगी कि निरन्तर दुःख-भोग करते रहने से जीवन का अनुभव संतुलन का स्तर गिरा देता है।"

"अपना-अपना विचार है। मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं कि सौख्य शारीरिक और ऐश्वर्य्य-गर्भित ही होता है। मेरी तो कुछ ऐसी मान्यता है कि सौख्य केवल एक मन का सन्तोष है, केवल वह शान्ति है जो प्रेरणा के रूप में आत्मा के गुह्य-से-गुह्य प्रान्तर में चुपचाप पड़ी रहती और निरन्तर जीवन को सरस रखकर प्राणमय बनाती रहती है। मल्लिका देवी से पहले ही संघर्ष में मैं जो विलग हो गयी उसके लिये मुझे कोई दुःख नहीं है। और शालमली देवी के साथ तो मेरा कोई मतभेद भी न था। उनको मुझसे कभी कोई शिकायत भी नहीं हुई। हाँ, एक बात अवश्य है। इतना मैं जानती थी कि शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें यश कभी नहीं मिलेगा। क्योंकि अपने पीछे वे कोई आदर्श नहीं रखतीं। जो छात्राएँ जीवन के नवनिर्माण की अभिलाषा रखती हैं, सफलता—सफलता, एकमात्र सफलता ही, जिनकी शिक्षा का मुख्य ध्येय होता है, उनको वे किसी प्रकार प्रभावित नहीं कर सकतीं। और ऐसा तो कभी हो नहीं सकता कि युग सदा सम्पर्क, सान्निध्य और भ्रष्टाचार की मुट्ठी में बना रहे। उनको भी एक दिन छोड़ना ही पड़ता और अन्त में छोड़ना ही पड़ा।"

संभव है यह वार्तालाप अभी और आगे बढ़ता; किन्तु उसी समय आ गये शोभा के स्वामी—पाण्डेयजी।

मस्तक के ऊपर केश कुछ कम हो गये हैं। गौर वर्ण और मुखाकृति प्रभावशाली है। चिबुक के बीच में थोड़ा संकोच है। दायें कान के ऊपर एक मस्सा है और काले केशों की बिखरी हुई पंक्ति है। शोभा की अपेक्षा समधिक प्रौढ़ हैं। टाई-बंधन कुछ ढीला पसन्द करते हैं। क्लीन-शेव्ड मुख पर हाथ फेरते हुए बोले—"दीदी आपको मेरा सादर नमस्कार है। बातें मुझे आपसे बहुत करनी थीं आज; लेकिन आज जरा जल्दी है। संक्षेप में इतना कह देना चाहता हूँ कि एक मेरी छोटी बहन है—उर्मिला। उसे मैं आपको सौंपना चाहता हूँ।"

जाह्नवी विचार में पड़ गयी और शोभा हँसने लगी। सिर के केश आज उसने सँवारे नहीं थे। इसलिये वार्तालाप की प्रभाव-जन्य मुख-गति से कभी-कभी एक-आध लट मस्तक और कनपटी पर आकर दोलन करने लगती। अधरों की लाली आज फिर से सँवारी नहीं गयी थी। फिर भी अपनी क्षीण झलक में यथेष्ट थी।

सहसा बोल उठी—"लो देखो, दीदी तो पहले ही विचार में पड़ गयीं।"

मुस्कराती हुई जाह्नवी ने कह दिया—"वैसे मैं आपकी कोई आज्ञा टाल तो सकती नहीं, केवल एक विनय कर सकती हूँ कि यों भी काफी लड़कियाँ घर पर आ जाती हैं। काम चल ही जाता है।"

पाण्डेयजी हँसने लगे। बोले—"आप समझी नहीं दीदी।

सौंपने का अर्थ वह नहीं है जो आप समझ रही हैं। मैं तो उसे आपकी सेवा और टहल के लिए सौंपना चाहता हूँ।"

जाह्नवी फिर विचार में पड़ गयी। फिर सँभलती हुई बोली—"कृपा होते हुए भी यह आपका मेरे साथ अन्याय है। मेरी ऐसी सामर्थ्य कहाँ, जो मैं ऐसी कल्पना भी कर सकूँ!"

"अब तक मैं आपकी प्रशंसा ही सुना करता था। साक्षात्कार का सौभाग्य आज मिला है और पहली ही भेंट में आप ऐसी बात कह रही हैं, जिसे सुनकर मैं शोभा की ओर देखने लगता हूं। अ ऽ...मेरा मतलब यह है कि आप तो कविता बोलती हैं। कोई कृपा भी कभी अन्याय होती है?"

"क्यों नहीं होती? उर्मिला के पति-निर्वाचन में जिस पात्र की ओर आपका संकेत है, मैं उसकी माँ हूँ। कृपा-रूप में आपके इस अन्याय को मैं नहीं समझूँगी तो कौन समझेगा?"

शोभा बोल उठी—"जीजी, क्या कभी हेम से कुछ मालूम नहीं हुआ?"

"मुझे सब कुछ मालूम है। मुझे यह भी मालूम है कि आपकी ही कृपा से वह पढ़ रहा है। ऐसी दशा में—जैसा मैंने पहले ही कह दिया कि अलग होकर तो मैं कहीं जा ही नहीं सकती। उसके निर्माण में आपका इतना अधिक हाथ है जो उसके सिर के केश सहलाते-सहलाते कभी-कभी मेरे कंधों पर भी जा पहुँचा है। भला मैं इस बात को कैसे भूल सकती हूँ?"

अब पाण्डेय जी बोल उठे—"तो फिर आज ही उसको अपने घर लेती जाइये। साल-छः महीने जो आपके पास रह

लेगी, तो फिर विवाह के बाद आपकी सेवा करने में पूर्ण रूप से निपुण सिद्ध होगी। बस, एक बात इस विषय में मुझे और कहनी है कि हेम को इस विषय में कोई संकेत नहीं मिलना चाहिये। इस अवधि में उसके खर्चे के लिए मैं दो सौ रुपये आपको भेजता रहूँगा।" और कथन के साथ पाण्डेय जी ने सौ-सौ के दो हरे नोट उसके सामने रख दिये।

जाह्नवी अत्यन्त संकोच मे पड़ गयी। उसे शकुन्तला का स्मरण आ रहा था। फिर यह भी उसके मन में आया कि महालक्ष्मी दीदी क्या कहेंगी!

तब वह बोली—"इस समय यह रुपये मैं न लूँगी। विचार करने के लिए मुझे थोड़ा-सा अवसर देना पड़ेगा।"

अब शोभा को बोलना पड़ा—"ऐसा नहीं होगा। रुपये आपको स्वीकार ही करने पड़ेंगे।" और इतना कहकर उसने दोनों नोट जाह्नवी के हाथ के बुने हुए ऊनी चेस्टर की जेब में डाल दिये।

जाह्नवी पुनः वापस करती हुई बोली—"आप पहले पूरी बात सुन लीजिये मेरी।"

पाण्डेयजी ने सोफ़े से उठकर द्वार की ओर जाते हुए कहा—"इस विषय में मैं अब कुछ नहीं सुनूँगा। मैं एक बार जो निश्चय कर लेता हूँ, उससे फिर टस-से-मस भी नहीं होता। शोभा के साथ तुम्हारा जो नाता है उसे मैं अटूट समझता हूँ। इसलिये हेम को मैं सदा के लिए अपना बना चुका हूँ।"

कथन के साथ पाण्डेय जी चल दिये और जाह्नवी कहती ही रह गयी—"सुनिये तो, बात तो सुनिये ज़रा !"

पाण्डेय जी एक बार दरवाज़े पर खड़े हुए और उन्होंनें कह दिया—"मैं अब कोई बात नहीं सुनूँगा ।"

जिस समय यह बातें हो रही थीं उसी समय डाक आ गयी । कई पत्रों के साथ एक पत्र निमंत्रण का भी था। शोभा ने झट खोल डाला । पढ़ती-पढ़ती मुस्करा उठी । पत्र उसने तुरन्त जाह्नवी की ओर बढ़ा दिया । उसके अनुसार शाल्मली देवी का विवाह बुद्धि रंजन उपाध्याय पो० सो०एस० के साथ होना निश्चित हुआ था । पाणिग्रहण संस्कार दो दिन बाद होगा ।

जाह्नवी के मुँह से निकल गया—"चलो, यह भी बहुत अच्छा हुआ । देर अवश्य हो गयी, लेकिन दीदी का कलंक धुल गया ।"

मुस्कराती हुई शोभा बोली—"यह भी तुम्हारी ही देन है दीदी । तुम्हारे ही विग्रह ने इस परिस्थिति को जन्म दिया है ।"

प्रत्येक विग्रह नव सृष्टि का सूत्रधार होता है ।

प्रेम जब अपने पिता के पास जाने लगा, तब हेम भी उसके साथ था । केवल कुछ क्षण तक के लिए, जब ट्रेन का इंजन सारे डिब्बों को खींचने के लिए, आकर्षण का पहला प्रयोग करता है ।

रिक्शे पर साथ बैठते-बैठते प्रेम बोला—"मुझे तो इस

समय अवकाश है नहीं, वरना मैं ही जाता।"

हेम ने पूछा—"कहाँ ?"

प्रेम ने उत्तर दिया—"महेश के पास। मुझे पता चला है कि विद्वेष भावना अब भी उसके मन में बनी हुई है। मैं ससुराल गया था। तुमको मालूम ही है। चाचाजी ने महेश और उसके साथ भाभी को भी तार देकर बुलाया था। मेरी धारणा है कि वह मुझ से झिझकता है। एक अहंकार उसके मन में है, जो मुझसे आँख नहीं मिलाने देता।"

"पर यह काम अकेले मेरे जाने से तो होगा नहीं। इसमें तुमको भी मेरे साथ होना चाहिए था। आमने-सामने बातें हो जातीं, तो बड़ी सुविधा के साथ उसकी सारी मनोग्रन्थियाँ खोल दी जातीं।"

प्रेम विचार में पड़ गया। थोड़ी देर बाद बोला—"तुम कहते तो ठीक ही हो। लेकिन इस समस्या के समाधान में एक ऐसी बात हमारे पक्ष में है, जो इसी समय एक अमोघ अस्त्र बन सकती है।"

"वह क्या ?"

"वह है एक शंका। उसने जवाब तो दे दिया था कि छुट्टी नहीं मिली। पर मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि उसने छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र ही नहीं दिया होगा। तुम पहले उसके साहब से मिल लेना। मेरा मतलब है नियोजन-अधिकारी से। अगर बतलाने में कुछ आपत्ति करें, तो तुम सारी कथा बता देना। और अन्त में इतना और जोड़ देना कि इस महेश को चित्तरोग है। वह अहंवाद का दास बन गया है। उसे इस

बात का पता नहीं है कि विद्वेष और प्रतिहिंसा जब जीवन-कल्याण में बाधक हो जाती है तब वह समाज के लिए ही नहीं, परिवार के लिए ही नहीं, वरन् स्वतः अपने लिए भी आत्मघातिनी सिद्ध होती है। ऐसा व्यक्ति जब आत्मतुष्टि के लिए कुछ नहीं कर पाता, तब स्वयं अपना ही घात कर बैठता है!"

जिस समय यह बात और प्रसंग चल रहा था उसी समय गाड़ी चल दी।

हेम एक शनिवार के दिन सूटकेस और होलडाल के साथ महेश के द्वार पर आ खड़ा हुआ। साहब से मिलकर और चपरासी से घर का पता लेकर जब वह उसके द्वार पर पहुँचा तो सायंकाल हो गया था। बत्तियाँ जल गयी थीं। एक नौकरानी भीतर से बाहर निकल रही थी।

हेम ने पूछा—"साहब भीतर हैं?"

नौकरानी ने उत्तर दिया—"हाँ, अभी-अभी खाना खाकर उठे हैं।"

"इस वक्त खाना खाकर उठे हैं! यह कोई खाना खाने का वक्त है?" हेम ने कह दिया।

नौकरानी बोली—"दफ्तर बहुत सबेरे जाना पड़ता है। सर्दी के कारण उस समय तक खाना नहीं बन पाता। दफ्तर में खाना पहुँचाने वाला कोई नौकर अभी तक मिला नहीं। इसलिए दफ्तर से लौटते ही तुरन्त खाने पर बैठ जाते हैं।"

हेम ने द्वार की कुंडी खटखटा दी।

भीतर से आवाज़ आयी—"कौन ?"

हेम ने उत्तर दिया—"मैं हूँ हेमचन्द्र ।"

महेश पहले आश्चर्य्य-चकित हो उठा । फिर झट से उठ कर अन्दर से ही बोल उठा—"स्वागतम् ।" और किवाड़ खोलकर झट से उसका सूटकेस हाथ में लटकाते हुए कहने लगा—"अहो भाग्य कि अचानक आ गये । इधर कई दिनों से मुझे तुम्हारी और प्रेम की याद आ रही थी । सामान इधर लाओ, यहाँ रख दो । अभी-अभी नौकरानी गयी है ।"

कमरे के भीतर ले जाकर पहले उसने अपने पलँग पर ही उसे बैठाते हुए कहा—"वैसे खाना तो हम लोग खा चुके हैं, किन्तु अँगीठी अभी बुझायी नहीं गयी है । पहले यह बताओ कि तुम इस वक्त भूखे तो होगे ही । इसलिए खाना पहले खाओगे कि चाय-वाय पियोगे ।"

हेम ने उत्तर दिया—"मुझे इस समय कुछ खाने की बिलकुल इच्छा नहीं है ।—क्योंकि तुमको सुनकर आश्चर्य्य होगा, मैं तुम्हारे बॉस के घर से आ रहा हूँ ,"

महेश विस्मय से अभिभूत हो कर बोला—"तो तुम जोशी जी के यहाँ से आ रहे हो ?"

हेम ने उत्तर दिया—"हां, एक आवश्यक काम के लिए उन्हीं से मिलना था ।"

महेश का शंकालु मन और भी संशकित हो उठा—'पता नहीं जोशी जी से इसने क्या-क्या जड़ दिया हो । जब विश्व-विद्यालय में था, तब इन लोगों ने मुझे भाग आने पर विवश कर दिया । अब यहाँ भी मेरे पीछे कोई-न-कोई

षडयंत्र लेकर आ पहुँचा है।

हेम समझ गया कि इसका मन शुद्ध नहीं—'इसने मुझसे यह भी नहीं पूछा कि कौनसा काम था।'

इतने में महेश निकट के कक्ष में चला गया।

पत्नी ने धीरे से पूछा—"हेम है क्या ?"

महेश ने उत्तर दिया—'हाँ, जानती तो हो सब इसकी लीलाएँ !"

"तो मैं अभी खाना बनाये देती हूँ। तुम तब तक पास बैठकर बातचीत करो। अच्छा ऐसा करो कि मैं अभी पहले चाय बनाये देती हूँ। कुछ बिस्किट और मेवे रक्खे हैं। तुम पहले चाय ही पिला दो। तुम्हारे इनके सम्बन्ध चाहे जैसे भी रहे हों, मैं इनके स्वागत-सत्कार में कोई कसर न रहने दूँगी।"

इस प्रकार पहले महेश ने हेम को चाय पिलायी। फिर दो घंटे बाद उसे भोजन करवाया। बीच-बीच में बातें भी चलती रहीं। जब सारी बातें समाप्त हो गयीं, तब चारपायी पर जाने के बाद हेम मूल विषय पर आ गया और बोला—"तुम सद्गृहस्थ भी बन गये और एक अच्छी सी नौकरी भी पा गये। चाहे जैसे प्राप्त हुई हो, यह बात अलग है। लेकिन इसका श्रेय तो तुम्हारे प्रयत्न को है ही। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि प्रतिक्रियाओं में पड़कर भी तुमने अन्त में उनसे लाभ ही उठा लिया।"

महेश बोल उठा—"छोड़ो इस पचड़े को। मेरे मन पर अब कोई प्रतिक्रिया नहीं रह गयी।"

हेम ने उत्तर दिया—"तुमने अब भी झूठ बोलना नहीं छोड़ा। सबसे ताजी प्रतिक्रिया तो यही है कि चाचाजी के बुलाने पर भी प्रेम के आगमन पर तुम सपरिवार घर नहीं पहुँचे।"

"पहुँचता कैसे ? मुझे छुट्टी ही नहीं मिली।"

"तुम फिर मुझसे झूठ बोले। छुट्टी के लिए तुमने आवेदन-पत्र भी दिया था ? मैं अभी जोशी जी के यहाँ से आ रहा हूँ और इसी काम के लिये आया था।"

महेश अवाक् हो उठा। थोड़ी देर चुप रहकर बोला—"भाई तुम जानते हो, मैं कितना कमज़ोर आदमी हूँ! मैंने सोचा, प्रेम से वार्तालाप करने में यदि कोई कटु प्रसंग आ गया तो मेरी स्थिति बड़ी भयानक हो उठेगी। एक ओर उसके साथ साले-बहनोई का नाता है, दूसरी ओर जीवन-संघर्ष का। वह सब तरह से सफल व्यक्ति है। मैं सब तरह से असफल व्यक्ति हूँ। नहीं तो उसकी भाँति एम० ए०, प्रथम श्रेणी में, मैं भी कर सकता था। और तब मैं भी किसी बड़े पद पर सहज ही पहुँच सकता था।"

"तो अभी क्या बिगड़ा है ? इंगलिश में कर सकते हो।"

"अब क्या कर सकता हूँ ! जो होना था सो हो गया। और कहो, तुम हमारे घर तो गये ही होगे ? बाबू और अम्मा, सम्भव है, अप्रसन्न भी हों। कुछ कहते तो नहीं थे ?"

हेम ने उत्तर दिया—"उनके ऊपर बड़ी प्रतिक्रिया है। चाची तो विष का घूँट पीकर रह गयीं, किन्तु चाचा तुम्हारे इस व्यवहार से बड़े दुःखी हैं। और जब मैं उनसे

कहूँगा कि महेश जान-बूझ कर नहीं आया है। छुट्टी उसने माँगी ही न थी। तब तो वे और भी दुखी होंगे। फिर न जाने क्या सोचें और क्या कर डालें! क्योंकि इतना तो तुम मानोगे कि वे तुम्हें चाहते बहुत हैं।"

यह एक ऐसा आघात था कि महेश का हृदय हिल उठा। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसकी आँखों में आँसू छलक आये। कुछ कहने ही जा रहा था कि हेम बोल उठा—"तुमको शायद यह मालूम नहीं कि हम सब आज कहाँ आ पहुँचे हैं। जब हमें अपने स्वाधीन राष्ट्र का नव-निर्माण करना है तब छोटी-छोटी प्रतिक्रियाओं से ग्रस्त होकर हम अपने समाज और देश का, परिवार और व्यक्तित्व का, कैसा अहित करते रहते हैं! फिर तुम्हारी स्थिति तो अत्यधिक दयनीय है। विद्यार्थी-जीवन के संघर्ष की प्रतिक्रिया अब तक तुम नहीं भूल सके। आत्म-तुष्टि के लिए बहिन तथा माता-पिता तक को धोखा देते हुए तुम्हें लाज न आयी!—जब कि मुझे यहाँ प्रेम ने ही भेजा है। वह स्वयं यहाँ आनेवाला था। पर उसके घर में ऐसा विग्रह उठ खड़ा हुआ है कि उसका वहाँ जाना अनिवार्य था।

महेश अब सिसकियाँ ले-लेकर रो उठा। क्रन्दन के स्वरों में उसने कह दिया—"हेम तुम मुझे क्षमा करदो। बाबू से भी तुम कुछ न कहना। तुम्हें मेरी शपथ है। मैं प्रेम से भी क्षमा माँग लूँगा। जो कुछ मैंने किया, मैं उसका प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हूँ।"

नासिका के ऊपर आँखों के पलकों तक अवगुण्ठन डाले

महेश की पत्नी तुरन्त कमरे के द्वार पर आ गयी और हेम बोल उठा—"बस, अब मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। रोओ मत भैया, शान्त हो जाओ। भूलें हमसे नित्य होती रहती हैं। पर विजयी वह होता है, जो भूल स्वीकार कर पावन आत्म-निष्ठा के साथ जीवन-संग्राम में सतत् आगे बढ़ता रहता है।"

फिर उस नवबधू को लक्ष्य कर हेम ने कह दिया—"आप चिन्ता न करें भाभी। यह प्रसङ्ग ही कुछ ऐसा था कि हृदय के रुद्ध द्वार खोलकर एक बार इसे रो लेने की बड़ी आवश्यकता थी। एक रुदन ही तो है, जो अन्तरात्मा का सारा कलुष मिनटों में मिटा देता है।"

रंजना ने उत्तर दिया—"आप ही इन्हें समझा सकते हैं। मैं तो समझाते-समझाते हार गयी।"

तब हेम ने पलँग के नीचे उतरकर झट उसके चरणों की रज-मस्तक से लगा दी।

रंजना ने पहले दायें हाथ से अवगुण्ठन को कुछ ऊपर कर लिया, फिर हेम के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वादात्मक वाणी में कह दिया—"सुखी रहो लाला। अब तक मैं तुम्हारा नाम ही सुनती रहती थी। आज आँखों के सामने भी देख लिया। धन्य हैं वे माँ, जिन्होंने तुम्हें अपनी कोख में जन्म दे कर वंश का गौरव बढ़ाया।"

नतशिर होकर हेम बोला—"मैंने तो भाभी अभी कुछ किया नहीं। हाँ, कर्म के पावन-पथ पर आ अवश्य गया हूँ। बापू ने एक बार कहा था—आचार-धर्म का सूत्र सोने का

होता है। क्योंकि उसके मूल में रहती है—पारस्परिक सहन-शीलता। ऐसा तो कभी हो नहीं सकता कि हम सब एक ही भाँति विचार करें। जब हमारे दृष्टिकोण भिन्न हैं, तब सब का निष्कर्ष एक ही रूप-रेखावाला सत्य होना असम्भव है। ऐसी दशा में खण्ड-सत्य ही हमारे हाथ लग पाता है। सदा सद्विवेक-चेतना भी सबके लिए एक ही वस्तु नहीं होती। इस लिये व्यक्तिगत जीवन में आचार-धर्म ही एक पाथेय रह जाता है। किन्तु उस आचार को भी हम बलपूर्वक तो किसी पर लाद नहीं सकते। क्योंकि व्यक्तिमात्र के बुद्धि-स्वातन्त्र्य में वह एक विकट हस्तक्षेप है, अक्षम्य और असह्य।"

हेम की इस बात को ध्यान से सुनकर रंजना अपने कमरे की ओर जाती हुई बोली—"लाला मैं तुम्हारी ये सब बातें सुनना चाहती हूँ। पर पहले मैं तुम्हारे लिए थोड़ा-सा खाना बना लूँ, उसके बाद और भी अधिक ध्यान से सुनूँगी।"

इसी समय द्वार की कुण्डी खटकने लगी। महेश तब तक शान्त हो चुका था। झट वही द्वार की ओर बढ़ गया।

तारवाले ने एक लिफ़ाफा महेश के आगे बढ़ा दिया।

हस्ताक्षर करने के बाद महेश ने जो तार खोला तो पढ़ते-पढ़ते उसने मत्था थाम लिया।

प्रेम ने इस तार में लिखा था—'क्षमा !'

—:०:—

१५

होली का दिन था और जाह्नवी हेम के साथ सरसेया घाट पर एक पीपल के वृक्ष के निकट खड़ी थी। स्नानार्थी-वृन्द सीढ़ियों के नीचे-ऊपर चढ़-उतर रहा था—भाँति-भाँति के स्नानार्थी। कोई अपनी माँ के साथ आया था, कोई पत्नी के साथ। किसी-किसी के साथ बहनें और बच्चे भी। कुछ बच्चे माताओं की गोद में थे, कुछ उनके निकट खड़े थे। हेम ने देखा—एक बच्चा एक बुढ़िया की पीठ पर बैठा हुआ कह रहा है—'अब मुझे उतार दो नानी। बस यहीं, इसी सीढ़ी पर।'

बुढ़िया के केश सन जैसे श्वेत थे, बदन में झुर्रियाँ थीं। धोती वह जो पहने हुए थी, उससे प्रतीत होता था, किसी भले घर की लक्ष्मी है। उसके पैरों में एक-एक बिछुआ था और सिर के मध्य में जो माँग थी, उसमें भरी हुई सिन्दूर की रेखा यद्यपि पिछले दिन की थी, फिर भी उसकी लालिमा स्पष्ट जान पड़ती थी।

बच्चा उसकी पीठ पर से उतर रहा था।

हेम ने हँसते-हँसते पूछा—"अम्मा, यह बच्चा अपने पैरों से चल सकता था, फिर भी पैदल न चलकर वह जो अपनी नानी की पीठ पर चढ़कर आया है, इसमें उस नानी के प्यार

का अधिकाधिक हाथ है, अथवा बच्चे की स्वाभाविक वृत्ति का ?"

जाह्नवी को हेम का यह प्रश्न बहुत प्रिय प्रतीत हुआ। उसे स्मरण हो आया कि यह अपने बाल-जीवन से ही इस प्रकार प्रश्न करता चला आया है। यहाँ तक कि आज भी इसके प्रश्नों का क्रम भंग नहीं हुआ।

जाह्नवी मुस्कराती हुई बोली—"बेटा, माँ हो या दादी, पिता हो या पितामह, नयीपौध पर अत्यधिक ममता होना स्वाभाविक है।"

"तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि इस नानी या दादी के स्थान पर इसकी माँ होती तो वह इसको पीठ पर इस तरह लादकर कभी न चलती ?"

जाह्नवी यह सोचकर और भी प्रसन्न हो उठी कि एक प्रश्न की अपेक्षा उसके मर्म का प्रश्न और भी गहरा होता है।

उसने स्वीकृति के स्वर में कह दिया—"हाँ, कभी न चलती। महाजनों की इस प्रवृत्ति का ज्ञान तो तुम्हें होगा ही कि मूल की अपेक्षा ब्याज ही उन्हें अधिक प्यारा होता है—उसकी उन्हें अधिक चिन्ता रहती है। सदा से वे यह विश्वास रखते चले आये हैं कि ब्याज अगर विधिवत् मिलता रहे, तो मूल कहाँ जाता है !"

हेम हँसने लगा। पर फिर तत्काल कुछ सोचकर उसने कह दिया—"तात्पर्य यह कि पुत्र की स्थिति मूलधन के समान है।"

जाह्नवी का उत्तर था—"है ही ।" किन्तु फिर तुरन्त वह इस विचार में पड़ गयी कि देखें अब यह क्या पूछता है ! वह पूछेगा अवश्य । फिर इसी विचार के साथ वह सीढ़ियों तक आ पहुँची ।

हेम आगे-आगे सीढ़ियाँ उतरता हुआ बोला—"पर अम्माँ, इस प्रसंग में अभी एक बात छुटी जा रही है, केवल एक बात ।"

जाह्नवी ने पूछा—"कौन सी ?"

हेम ने कह दिया—"इस प्रकार पुत्र जब मूलधन होता है तब पुत्र-वधू को तुम क्या कहोगी ?"

इस बार जाह्नवी अधिक विचार में पड़ गयी । तत्काल उसकी समझ में न आया कि क्या उत्तर दूँ । फिर भी उसने सोचा, कुछ-न-कुछ तो कहना ही चाहिए । तब वह बोली—"मुझे ऐसा लगता है हेम कि महाजनी प्रथा के अनुसार वार्षिक रूप से यदि ब्याज नहीं मिलता, तो वह मूलधन में मिलकर मिश्र-धन बन जाता है; और फिर आगामी ब्याज पुनः मिश्रधन पर चलता है, मूलधन पर नहीं । इस प्रकार के ब्याज को हम चक्रवृद्धि ब्याज कहते हैं जिसका महत्व ब्याज की अपेक्षा कहीं अधिक होता है ।"

"तो तुम कहना चाहती हो कि पुत्र-वधू मिश्रधन हो सकती है ?"

जाह्नवी हँस पड़ी ।

अब दोनों गंगा के निकट जा पहुँचे । धारा की ओर इंगितकर हेम ने कह दिया—"अम्मा देखो, यहाँ मैं अपने सामने दो माताओं को देख रहा हूँ । एक यह है—अनन्तसलिला

जाह्नवी और दूसरी तुम हो—प्राणदायिनी । मेरे लिए दोनों समान हैं । एक पापनाशिनी है, दूसरी भयनाशिनी ।"

जाह्नवी विचार में पड़ गई । हेम फिर बोल उठा—"अम्मा, पहले मैं नहा लूँ, फिर तुम नहा लेना ।"

हेम आगे बढ़कर स्नान करने लगा । जिस सीढ़ी पर वह खड़ा था, वहाँ गहराई का स्तर कमर तक ही पहुँच पाता था । तब वह एक सीढ़ी और नीचे उतरने लगा ।

जाह्नवी ने कह दिया—"बस, अब और आगे मत बढ़ो । यहीं नहा लो ।"

अभी थोड़ा-बहुत जाड़ा पड़ रहा था । इसलिए हेम अधिक देर न लगाकर दो मिनट के अन्दर वापस आ गया । जाह्नवी ने तौलिया उसके आगे कर दिया । हेम अभी देह पोंछ ही रहा था कि जाह्नवी भी स्नान के लिए चल दी । हेम सोचने लगा—'क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ समझ में नहीं आता ।' फिर धोती पहनता-पहनता इस चिन्ता में पड़ गया कि अम्मा से कैसे कहा जाय ! सरोज की बात दूसरी थी । प्रेम के साथ न तो मैं ईर्ष्या कर सकता था, न विश्वासघात । जानबूझकर मैंने सरोज से कह दिया कि मैंने तुमको प्राप्त करने की कभी आकांक्षा नहीं की । तुमको सदा भ्रम होता रहा । अब इस भ्रम को और अधिक पनपने देना मेरे लिए संभव नहीं है । मानता हूँ कि आँधियाँ आती रही हैं । किन्तु फिर तुरन्त पानी बरस गया है । अच्छी तरह नहीं बरसा, तो बूँदा-बूँदी तो हो ही गयी है । प्यास चाहे जैसी हो, किन्तु आँसुओं के दो-चार बूँद गिर जाने से गर्द-गुबार और धूल धरती पर जम जाती है । फिर आयी

यह शकुन्तला। मैंने ऐसा कभी सोचा न था। मैं उसकी कभी कल्पना भी न कर सकता था। एक दिन ऐसा भी आ गया कि बिना सोचे-समझे मैं उसे पुस्तकें भेंट करने लगा। महालक्ष्मी देवी मेरे परोक्ष में आने-जाने लगीं। उनके पास सम्पदा की कमी नहीं। और अम्मा को तो वे अपनी बहन की तरह मानती हैं। कितना अवलम्ब उनसे मिला है! अम्मा को भी ज्ञान न था और मैं तो सोच ही नहीं सकता था कि उनके मन में सूत्ररूप में कोई विचार, रुई की पोनी से जैसे धागा निकलता है वैसे ही, एक क्रम के अनुसार, बिना कहीं टूटे, आगे बढ़ता जायगा। शकुन्तला मेरे इलाहाबाद से लौटने पर प्रायः झगड़ने लगी—'इतने दिन बाद आये हो और हमारे लिए कुछ नहीं लाये? मूर्खराज कहीं के!' हेम मन-ही-मन हँसने लगा—'अम्मा ने भी एक बार देख लिया था, उसे मेरे प्रति इस उपालम्भ के साथ। मुझे आश्चर्य्य हो रहा है कि उसी समय उन्हें कोई सन्देह क्यों नहीं हुआ? उसके बाद एक और नयी बला उन्होंने पाल ली है। आज पाण्डेयजी ने मुझे बुलाया है। सबसे बड़ी बिपदा यह है कि घर से जब मैं कहीं चलने लगता हूँ तो किसी-न-किसी कार्य के बहाने उर्मिला मेरे साथ चल देती है। आदर और श्रद्धा की बात दूसरी है। किन्तु प्रेम को मैं किसी क़ीमत पर बेच नहीं सकता। अब प्रश्न यही उठता है कि क्या यह सब बातें मुँह से कहने की हैं?'

हेम कपड़े पहन चुका था। बालों में कंघी कर रहा था कि सहसा ध्यान हो आया—'अम्मा नहा चुकी होंगी। नीचे सीढ़ियों की ओर जो दृष्टि डाली, तो देखता क्या है कि वे धोती

बदल चुकी हैं और अपनी ही नहीं, मेरी भी धोती उठा ले गई हैं।

तब वह आघात से अभिभूत हो उठा—'एक क्षण को भी ध्यान बट जाय तो प्रकृति की जड़ता मनुष्य का सिर झुका देती है। मैं इतना अन्धा बन जाता हूँ कि अगला पैर कहाँ पड़ रहा है, इतना भी नहीं देख पाता। थोड़ा-सा भी चूक जाने पर अनर्थ हो जाता है।' तत्काल सीढ़ियां उतरकर हाथ बढ़ाते हुए उसने माँ के हाथ से धोती छीन ली। फिर वह बोला—"एक क्षण की भी चूक आदमी का सारा गौरव नष्ट कर देती है।"

जाह्नवी ने धोती तो छोड़ दी, किन्तु तत्काल वह पूछ बैठी—"चूक की इसमें क्या बात है बेटा ?"

"बात कैसे नहीं है ? तुम मेरी धोती छाँटोगी और मैं देखता रहूँगा !"

जाह्नवी बोली—"तो क्या हुआ ? मेरे लिए तो तू सदा बच्चा ही रहेगा। जब तक शरीर में शक्ति रहेगी, तब तक तेरे सौख्य का ध्यान मेरे प्यार का अधिकार बना रहेगा। इसमें अन्तर कैसे पड़ सकता है ?"

हेम थोड़ी देर तो विचार में पड़ा रहा, फिर सीढ़ियाँ चढ़ कर पंडाजी के तख्त पर बैठ गया और बोला—"मैं पाण्डेयजी के पास जा तो रहा हूँ अम्मा, किन्तु मुझे भय है कि उर्मिला भी मेरे साथ लग जायगी। मैंने प्रायः देखा है कि उसका ध्यान अध्ययन में उतना नहीं लगता, जितना मेरे साथ घूमने-फिरने और विवाद करने में।"

जाह्नवी बोली—"तुम चिन्ता न करो हेम, सब ठीक हो

जायगा।"

हेम कुछ गम्भीर होकर बोला—"क्या ठीक हो जायगा ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि हम एक जाल में फँस गये हैं। उद्धार का कोई मार्ग मुझे नहीं दिखायी पड़ता।"

यह बातें अभी चल ही रही थीं कि पश्चिम ओर से परमेश्वरी बाबू सामने आ पहुँचे। हेम ने घड़ी देखी, तो झट उसने कह दिया—"लो, नौ बज गये ! मैं तो अब यहाँ से सीधे पाण्डेयजी के यहाँ जा रहा हूँ। मामा जी भी आ गये।" और कथन के साथ परमेश्वरी बाबू की ओर उन्मुख होकर बोला—"मामाजो को मेरा सादर नमस्कार। कहिये, अब तो आप प्रिंसिपल हो गये हैं अपने कालेज में। और सुना है वेतन भी आपका अब पाँच सौ से ऊपर हो गया है। अब तो आपको गाड़ी खरीद लेनी चाहिए।"

परमेश्वरी बाबू ने उत्तर दिया—"सुखी रहो बेटा ! जीवन की गाड़ी बीच में बिना रुके आगे बढ़ती जाय, सुरेश भी किसी सिलसिले से लग जाय—मैं इसी को अपने लिए सबसे बड़ी गाड़ी समझूँगा।"

हेम बोला—"क्षमा कीजिएगा, मुझे तो इस समय एक आवश्यक काम है। इसलिए मुझको तो अब आज्ञा दीजिए। फिर दर्शन करूँगा। मुझे महेश के विषय में भी आपसे कुछ बातें करनी हैं।"

हेम चलने लगा तो परमेश्वरी बाबू बोले—"प्रेम और तुमने मिलकर सब ठीक कर लिया है। मुझे सब मालूम है। और कल तो एक सप्ताह की छुट्टी लेकर बहू के साथ वह घर

भी आ गया है। तुमको बहुत पूछ रहा था। आना जरूर। सरोज भी आजकल यहीं है।"

"अच्छा-अच्छा, मैं आऊँगा, मुझे ध्यान रहेगा।"

जाह्नवी को पहले तो नहीं, बहुत दिनों के बाद, अभी दो वर्ष पूर्व, सरोज और हेम की हार्दिकता का थोड़ा-सा परिचय मिल चुका था। अतएव उसे यह समझने में देर न लगी कि परमेश्वरी बाबू ने इस समय सरोज की उपस्थिति की चर्चा क्यों की। उसने परमेश्वरी बाबू की ओर उन्मुख होकर कह दिया—"भाई साहब, आपकी भावना को मैंने सहसा जो आघात पहुँचा दिया उसका मुझे दुःख है।"

"मुझे स्वयं दुःख है। यद्यपि यह प्रकरण अब धूमिल अतीत में समा गया है। आइये, चलें।"

जाह्नवी आगे बढ़ गयी। परमेश्वरी बाबू ने उस प्रसंग के क्रम को आगे बढ़ाते हुए कह दिया—"मैं जानता था एक दिन ऐसा आ सकता है कि आप भ्रम में पड़ जायँ।"

जाह्नवी इस प्रसंग में कोई बात करना नहीं चाहती थी। वह तो कभी-कभी यह भी कल्पना करने लगती थी कि अब उनसे कभी भेंट न होगी। संयोग की बात दूसरी है। जिस तरह आज अकस्मात् भेंट हो गयी। धीरे-धीरे सतर्कता के साथ उसने उत्तर दिया—"तुम जिस भ्रम की बात कर रहे हो, वह आज का नहीं, बहुत पुराना है। न मैं उसे जानती थी और मेरा ख्याल है, न तुम उसे जानते होगे। एक संयोग ही था कि उस दिन अकस्मात् ट्रेन में तुमसे भेंट हो गयी। उस पहली ही भेंट में तुमने मुझे आकृष्ट कर लिया था। तुम्हारी

सज्जनता ने मुझे आश्चर्य्य में डाल दिया था। फिर अन्त में उस आश्चर्य्य का भी समाधान मिल गया। तुमने उस सूत्र को टूटने नहीं दिया, जब तुम हेम की वर्षगाँठ के समय एक उदारता के साथ मेरे यहाँ आ पहुँचे। न आते तो कभी कोई भ्रम न होता। यात्रा-संयोग की भेंट में शृंखला प्रायः कम होती है। किन्तु तुमने उसे स्थिर रखने की सतत चेष्टा की। उस चेष्टा में तुम्हारी शालीनता ने मुझे अभिभूत कर डाला। यही स्वाभाविक भी था। पर तुम जिसको भ्रम कहते हो, मैं उसे प्रयोग समझती हूँ।"

इतने में एक ताँगा सामने आ गया। परमेश्वरी इस संकोच में था कि कहीं ऐसा न हो कि मैं इससे बैठने का प्रस्ताव करूँ और सदा की भाँति यह उसे अस्वीकार कर दे।

इतने में जाह्नवी ने कह दिया—"आओ बैठो।" और कथन के साथ वह अगले पावदान पर चढ़कर उत्तरी भाग में बैठने लगी।

परमेश्वरी बाबू बोल उठे—"गड़बड़ मत करो। इधर बैठो। वह स्थान मेरे लिये है।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"सदा से तुमको यही भ्रम रहा है। किन्तु मैंने उस दिन—बैठो-बैठो—इसी भ्रम का निवारण करने के लिये वह पुराना पत्र तुम्हारे सामने रख दिया था।"

फिर उसने ताँगे वाले को लक्ष्य करके कहा—"चलो, डिप्टी के पड़ाव के आगे जो देवनगर है न, बस वहीं।"

तांगेवाले ने एक चाबुकी घोड़ी की पीठ पर जमा दी। ताँगा चल पड़ा।

जाह्नवी ने इस प्रसंग के क्रम को आगे बढ़ाते हुए कहा—"मैं जानती थी, तुम बुरा मान जाओगे। और तुम मान भी गये। तुमने यह न सोचा कि भ्रम जैसी चीज़ को सतत बनाये रखने की अपेक्षा उसका निवारण कर देना ही कल्याणकर होता है। तुमने यह भी न सोचा कि ऐसी अवस्था में निवारण भी निर्माण का ही एक रूप होता है। परिणाम यह हुआ कि तुमने मेरे यहाँ आना भी छोड़ दिया। कल घर में क्षेम की वर्षगाँठ थी। मुझे तुम्हारा कई बार स्मरण आया। तुम्हें याद होगा, पिछली भेंट में तुमने कहा था—शब्दावली तो मुझे ठीक-ठीक याद नहीं—किन्तु उसका अभिप्राय यही था कि एक ओर का अनुरोध पारस्परिक सम्बन्धों को अधिक निकट लाने में कभी सहायक नहीं होता। किन्तु मैं सोचती हूँ कि भ्रम-निवारण भी प्रकारान्तर से अनुरोध का ही एक रूपान्तर है। मुझे आश्चर्य्य है कि तुमने निवारण को अनुरोध क्यों नहीं समझा!"

'आज जब से इस जाह्नवी ने मुँह खोला है तब से उसका व्यवहार मेरे प्रति एक-दम से बदला हुआ जान पड़ता है।' परमेश्वरी बाबू बराबर इसे अनुभव कर रहे थे—'पहले यह मुझ से आप कहती थी। यद्यपि नाता भाई साहब का ही कहलाता था। नाता आज भी वही बना हुआ है, किन्तु 'आप' शब्द का स्थान यह जो 'तुम ने ग्रहण कर लिया है—यह एक विलक्षण बात है। फिर वह यह भी सोचने लगे—'हो सकता है यह परिवर्तन निवारण की देन हो।'

तब वे बोल उठे—"मैंने सदा यही देखा और अनुभव

किया है कि जीवन की सत्य और कटु अभिव्यंजना में तुम मुझ से कहीं अधिक अग्रसर हो। मैं यह भी मानता हूँ कि निर्माण और विकास के लिए—जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है, व्यक्तिगत जीवन का सम्बन्ध है—दुःख-भोग और अटूट संयम सबसे बड़ी कसौटी है। किन्तु एक बात अब भी मुझे तुमसे समझनी है कि मान लो, मैं किसी भ्रम में रहा हूँ; किन्तु यदि कभी कोई भ्रम भी एक अनुरोध बन जाय, भले ही उस का मुख निवारण का हो, तो क्या वह निरन्तर अपराध ही बना रहेगा ? और भी एक बात है। मान लो, वह अपराध ही हो और बना भी रहे, तो भी क्या वह अस्वाभाविक और अमानवीय होगा ?"

जाह्नवी ने अनुभव किया—यह तो एक आघात है। यह आघात ही नहीं, वरन प्रत्याघात है। इसका मैं क्या उत्तर दूँ ? प्रत्याघात भी कोई उत्तर है ! तब वह कह उठी—"देखो भैया, मुझको पुनः भ्रम में डालने की चेष्ट मत करो। मेरा अनुरोध है कि एक बार मुझे समझने की ही चेष्टा करो। यह जिसको तुम स्वाभाविक और मानवीय कहते हो, वही, इतना तो तुम मानोगे कि एक 'इन्सटिंक्ट' है, जो पशु का धर्म है। और मानती हूँ कि एक सीमा तक मानवप्रकृति भी है। किन्तु प्रकृति, स्वभाव और दुर्बलता कहकर तुम यह क्यों भूल जाते हो कि वह एक मानसिक रोग भी है। और ऐसे मानसरोगी को मैं कभी क्षमा नहीं कर सकती जो खट्टी डकारें आने पर भी माँ-बहन के सामने भूखा होने का स्वांग रचता है ! समय-असमय यत्र-तत्र-सर्वत्र यही कहता घूमता और चिल्लाता है—'मैं भूखा

हूँ। मुझे भूख लगी है।"

जाह्नवी का इतना कहना था कि परमेश्वरी बाबू अवाक् हो उठे। उनका चेहरा सफ़ेद पड़ गया। थोड़ी देर बाद जाह्नवी ने देखा कि परमेश्वरीबाबू रूमाल हाथ में लिये आँसू पोंछ रहे हैं।

इतने में देवनगर का चौराहा आ गया। जाह्नवी उतर पड़ी। इसी समय परमेश्वरी बाबू बोल उठे—"मुझे क्षमा कर देना बहन। मैं वय में भले ही समान होऊं, किन्तु ज्ञान में तुम्हारे आगे अपने आपको एक अबोध बालक-सा पाता हूँ।"

जाह्नवी हँसने लगी। बोली—"अच्छा जाओ, क्षमा कर दिया।" जेब टटोलती हुई पुनः कहने लगी—"फुटकर पैसे तो मेरे पास हैं नहीं। और इस बातचीत में नोट भुनाने का मुझे ध्यान ही नहीं रहा। अब इसी बात पर मेरे हिस्से के पैसे भी तुम्हीं दे देना।"

"अब और लज्जित मत करो बहन"—कहकर परमेश्वरी ने हाथ जोड़ दिये।

"इन्टरव्यू हो गया चाचाजी।" पाण्डेय जी के पास पहुँचते ही हेम ने कह दिया—आपके प्रताप से ए० डी० एम्० के लिए चुन भी लिया गया। कल मेडिकल-टेस्ट भी हो गया।

पाण्डेयजी बोले—"मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।" फिर थोड़ी देर ठहरकर कहने लगे—"हेम बेटा, मुझे तुम्हारी उन्नति पर बड़ा अभिमान है। तुम्हारे नगर में तुम्हारी श्रेणी के और भी युवक हैं, पर इसमें तो कोई संदेह नहीं कि उनमें से

कोई इतना मेधावी नहीं, जितने तुम हो। मैंने सोचा तो बहुत कुछ था, लेकिन अभी आज सवेरे ही मुझे जो सूचना मिली है उससे मैं बहुत चिन्ता में पड़ गया हूँ।"

"चिन्ता कैसी ? मैं समझा नहीं कुछ।"

"चिन्ता और कोई नहीं, उर्मिला के विवाह की है। तुम तो उससे मिल चुके हो ?"

"मिल ही नहीं चुका हूँ, एकाध बार तो बुरी तरह से डाँट भी चुका हूँ।"

पाण्डेयजी मुस्कराने लगे—"अच्छा डाँट भी चुके हो—गुड ! उसे ऐसे ही साथ की आवश्यकता भी है जो उसे प्रभावित और प्रभावित ही क्यों—संचालित भी कर सके। पर तुमको उससे कोई शिकायत तो नहीं है ?"

"चाचाजी, शिकायत की बात ऐसी है कि···अब मैं आपसे क्या कहूँ। आप बड़े हैं, मेरे पिता के समान हैं। आप जानते ही हैं, हमारे जीवन में कुछ बातें ऐसी हो जाती हैं, कुछ धारणाएँ मानस पर ऐसी जम जाती हैं, कुछ रुचियाँ और विश्वास ऐसे स्थिर हो जाते हैं जो टस से मस नहीं होते।"

"मैं समझ गया—समझ गया। तुम शायद यह कहना चाहते हो कि उसकी चंचल प्रकृति के साथ तुम्हारी मान्यताओं का एकात्मभाव हो नहीं पाता।"

"चाचाजी, बात तो कुछ ऐसी ही है। सबसे बड़ा दोष उसमें यह है कि निषेध और वर्जना पर उसकी कोई आस्था नहीं है। संयम के प्रति कोई निष्ठा नहीं है। और सच्ची बात यह है कि बी० ए० तक शिक्षा पाने पर भी वह

अभी तक अबोध बनी हुई है।"

"मैंने जिस ज्योतिषी को उसकी जन्मपत्री दी, उसका भी कुछ ऐसा ही कहना है। बल्कि उसने तो और भी एक ऐसी बात बतायी, जिससे मैं काँप उठा हूँ।"

"वह क्या ? वह क्या है चाचा जी ?"

"खैर उसको जाने दो तुम। तुम्हारी इस सम्मति ने तो मेरा निश्चय और भी बदल दिया है। क्या बताऊँ, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। इतना तो मैं जानता हूं कि अगर वह तुम्हारे साथ रह सकती, तो एक-न-एक दिन तुम्हारी मान्यताओं के अनुकूल बन ही जाती। किन्तु ज्योतिषी के कथन ने सारी स्थिति बदल डाली है।"

"तो चाचाजी फिर मुझे बतला हीं दीजिए न ! मैं किसी से कहने थोड़े ही जा रहा हूँ। कुछ भी हो, कैसी भी परिस्थिति हो, मैं आपको चिन्ता में डालने का कारण तो कभी बन नहीं सकता।"

इतने में शोभा आ गई। बोली—"ज्योतिषी जी यहाँ तो आने से रहे। अस्सी वर्ष के हो गये हैं। कहीं जाते-आते नहीं हैं। अपने स्थान पर ही डटे रहते हैं। दक्षिणा का कोई आग्रह नहीं करते। फिर भी लोग सुविधापूर्वक दस-बीस रुपये उनके चरणों पर चढ़ा ही आते हैं। मैं जाह्नवी को लेकर उनके यहाँ गई थी। उनका कहना है कि इसके मंगल-ग्रह बड़े प्रबल हैं। विवाह अभी दो वर्ष तक तो हो नहीं सकता। उसके बाद भी उसी व्यक्ति से होना चाहिए जो मंगल-मूर्ति हो, जिसका मंगल इससे भी प्रबल हो। ऐसी दशा में हेम के साथ उसका

सम्बन्ध किसी प्रकार नहीं हो सकता। यह ऐसी समस्या है जिसमें कन्या का ही कल्याणपक्ष वर को कल्याण मय बनाता है। अर्थात् उसका सौभाग्य ही बर का सौभाग्य होता है। और जब ग्रह-दशा ऐसी हो कि एक का दुर्भाग्य दूसरे के प्राणघात का कारण बने, तब इस प्रकार का सम्बन्ध सर्वथा त्याज्य होता है। हमें दोनों ओर का ध्यान रखना है। इसलिए हमें अपनी सुविधा का ध्यान न रखकर जल्दबाज़ी में कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो किसी भी पक्ष के लिए प्राणान्तक हानिकर हो।"

शोभा का इतना कहना था कि पाण्डेयजी बोल उठे—"मुझे बहुत दुःख है हेम कि मेरी यह अभिलाषा पूरी न हुई।"

"कोई बात नहीं चाचा, भगवान चाहेगा, तो आपकी यह उलझन भी शीघ्र ही दूर हो जायगी। मेरा एक बालबन्धु शारदा है। मुझे मालूम है, वह घोर मंगली है। उसे तैयार कर लेने का दायित्व मैं लेता हूँ।" हेम अभी और भी कुछ कहता, पर उसी समय उर्मिला फुदकती हुई आ पहुँची और बोली—श्रीमान् १००८ हेमचन्द्र महोदय, आपको फ़ोन पर कोई बुला रहा है। मैंने काम पूछा, तो उसने उत्तर दिया—बात उसी से कहने को है।" और इसके बाद वह हँसती-हँसती टाफ़ी चूसने लगी।

हेम ने फ़ोन का रिसीवर जो कान में लगाया, तो महेश बोल उठा—फ़ौरन तैयार होकर स्टेशन पहुँचो। पार्सल-ट्रेन लेट है, गाड़ी मिल जायगी। मैं भी वहीं मिलूँगा। प्रेम का तार है—चाचाजी का जीवन संकट में है। ऐसे समय हमारा

वहाँ जाना अनिवार्य है।"

शोभा के साथ उर्मिला तब तक उसी कमरे में आ गयी थी, जहाँ फ़ोन था।

हेम तब नमस्कार कर चल खड़ा हुआ।

उसी दिन सायंकाल महेश और हेम, प्रेम के घर जा पहुँचे। पास-पड़ोस के लोग जमा हो गये थे और डाक्टर दास स्टेथस्कोप ग्रीवा पर लटकाये हुए भवानीबाबू की नाड़ी देख रहे थे। प्रलाप अभी तक शान्त नहीं हुआ था, पलक मुँदे हुए थे। कभी-कभी होंठ बन्द हो जाते और फिर अन्तस् की मर्मवाणी फूट पड़ती।

प्रेम उनके निकट खड़ा हुआ, कान लगाकर, उन शब्दों को सुनने और समझने की बराबर चेष्टा कर रहा था, जो ऐसी गम्भीर बेला में भवानीबाबू बुदबुदा उठते थे।

भवानी बाबू के शब्द थे—"मुझे बहुत जीना है राधेगोविन्द। मैं अभी मरूँगा नहीं। मुझे तुम्हारी उन प्रतिक्रियाओं को भी देखना है, जिनके मूलाधार मेरे कर्म हैं। मुझे तुम्हारे उस मुख को भी देखना है, जिसे तुम अपने मैले हाथों से काला कर डालना चाहते हो। मुझे उन हाथों को भी साफ़ करना है, जो बचपन से ही मैले रहते आये हैं। मैं निर्माण का पक्षपाती हूँ। मुझे प्रेम से बड़ी आशा है। बेटा प्रेम, ज़रा साबुन तो देना। हाथ धो डालूँ। परम-पिता केवल स्वच्छ हाथों को देखता है, मैले हाथों को नहीं।"

इतने में डाक्टर साहब बोल उठे—"मुझे आज बड़ा आश्चर्य्य हो रहा है। इस आयु के किसी भी वृद्ध में, जीवन के प्रति, मैंने ऐसी अटूट आस्था नहीं देखी। नाड़ी की गति ठीक हो गयी है। बस, अभी थोड़ी देर में इनकी तबियत ठीक हो जायगी। आप लोग यह भीड़ हटा दें। आँखें खुलते समय इनके पास ज्यादा आदमी खड़े न रहें तो अच्छा होगा।"

पारिवारिक बच्चों, बहुओं, लड़कियों के साथ दुर्गा की रुदन और क्रन्दन ध्वनियाँ अब तक आ रही थीं। अतः फिर उन्होंने कह दिया—"अब यह रोना-धोना भी बन्द होना चाहिए। चिन्ता की घड़ी टल गयी है।"

प्रेम राधेगोविन्द के निकट जाकर कह रहा था—"बड़े भैया, तुमने बिना सोचे-समझे ऐसा कार्य कर डाला कि बाबू का जीवन संकट में पड़ गया। तुमको दुनिया से शिकायत थी। पर मैंने तो कभी तुमको दूसरा नहीं समझा। पिछली बार तुमने घड़ी के लिए कहा था—"लो, सोने की यह घड़ी मुझे टेस्ट-मैच से, पुरस्कार रूप में, मिली थी। अब इसे तुम्हीं अपने पास रक्खो।" और कथन के साथ उसने अपने हाथ की घड़ी राधेगोविन्द को दे दी।

राधेगोविन्द की आँखों में आँसू छलछला आये। बोला—"बस प्रेम, एक तुम्हीं इस घर में ऐसे हो, जिसको सामने पाकर मेरा मुँह सीं जाता है। इस बार बाबू अच्छे भर हो जायँ। मैं कभी जो अलग होने का नाम भी लूँ, तो तुम मेरे मुँह पर थूक देना!"

भाभी सामने खड़ी थीं। बोली—"लाला, सारा अपराध

मेरा है। तुम मेरे सामने बच्चे हो, फिर भी मैं तुमसे क्षमा चाहती हूँ!"

प्रेम ने देखा—कथन के साथ भाभी का कण्ठ भर आया है।

इतने में डाक्टर साहब बोल उठे—"कैसाजो है दादा?"

भवानी बाबू ने इधर-उधर आँखें घुमाते हुए उत्तर दिया—"अब तो ठीक है डाक्टरसाहब। लेकिन प्रेम आया कि नहीं?"

पुकार सुनते ही प्रेम और उसके साथ हेम तुरन्त उनके पास जा पहुँचे।

डाक्टर साहब ने चलते-चलते कह दिया—"मैंने इंजेक्शन तो दे दिया है। फिर भी दादा को थोड़ा कुनकुना दूध पिला देना।"

दूध पीकर भवानी बाबू ने प्रेम को अपने पास बैठने का संकेत करते हुए पूछा—"तुम तो कहते थे, हम इस बार बहू को साथ ले आयेंगे। फिर ले आये कि नहीं?"

प्रेम ने सिर नीचा कर लिया।

दुर्गा सामने खड़ी थी। बोली—"बहू भी आयी है। दस पांच दिन में गोद भरी जायगी। सगुन के लिए अभी से तैयार हो जाओ।"

भवानी बाबू की आँखों में आनन्दाश्रु आ गये। हेम इस समय प्रेम की ओर देख रहा था। तुरन्त उसके कान में बोला—"मिठाई ड्यू हो गयी। बधाइयाँ!"

विश्वनाथ हेम के पास जाकर बोल उठा—"हेम भैया, छोटी भाभी तुमको याद कर रही हैं।"

इसी समय महेश प्रेम के निकट आ पहुँचा। बोला—

"अरे प्रेम, घड़ी से हीन तुम्हारा सूना हाथ मुझे अच्छा नहीं लगता।" और कथन के साथ ही उसने अपनी नयी घड़ी उतार कर प्रेम के हाथ में बाँध दी।

उसी क्षण प्रेम बोल उठा—"अब मुझे मालूम हुआ कि तुम्हारे मन में मेरे प्रति कोई विकार नहीं रह गया है।"

पुलकित महेश ने उत्तर दिया—"इसका श्रेय भी तुम्हीं को है। वरना, तुम जानते हो, मैं कितना दुर्बल व्यक्ति रहा हूँ!"

मन्द-मन्द हास के झकोर में सरोज प्रेम से कह रही थी—"मैं सब कुछ सुन चुकी हूँ। मुझे सभी बातों का पता लगता रहा है—केवल एक बात को छोड़कर।"

हेम ने पूछा—"कौनसी बात?"

सरोज ने उत्तर दिया—"यही कि तुम दुष्यन्त तो बन गये, पर शकुन्तला को तुमने मुझे कभी देखने का अवसर नहीं दिया!"

हर्षोत्फुल्ल हेम के मुख से निकल गया—"यहीं तुम भूल रही हो सरोज। बुद्धिमान व्यक्ति को जितने अवसर मिलते हैं, उनसे अधिक तो वह तुम्हारी भाँति स्वयं उत्पन्न कर लेता है!"

—:o:—

१६

अन्त में शकुन्तला के साथ हेम के विवाह का अवसर भी आ गया। महालक्ष्मी की बात ही दूसरी थी। जैसी सम्पदा थी, वैसा ही उत्साह था। किन्तु जाह्नवी के घर में भी शोभा प्रसाधनों की कमी न थी। मंडप के चारों ओर कदली-स्तम्भों के साथ रम्भा पल्लव सुशोभित थे। आम्र-पत्रावली की बन्दनवार और विविध वर्णों की झंडियाँ घर के द्वार तक डोरियों के साथ लटक रही थीं। कहीं राधा-माधव, सीता-राम, गौरी-शंकर, राम-कौशल्या और गणेश-पार्वती के चित्र टंगे थे, कहीं बापू का आशीर्वाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू का मानस-चिन्तन, लौहपुरुष पटेल की राष्ट्र-चेतना, नेताजी सुभाष का सेनापति रूप और लुंगी पहने घड़ी हाथ में बाँधे पंडित चन्द्रशेखर आज़ाद का मूँछों पर ताव देना इतना शोभन प्रतीत होता कि निमंत्रित लोग खड़े देखते रह जाते।

इलाहाबाद से दोनों भाई-भाभियाँ तथा भतीजे आये थे, नंदनंदन के छोटे भाई—सपरिवार—चार दिन पूर्व ही आ गये थे। प्रेम तो था ही, सरोज भी आमंत्रित थी। महेश प्रेम के साथ-साथ दौड़ा-दौड़ा फिरता था।—यह जाजम यहाँ ठीक

रहेगी।—द्वार पर ग्यारह बल्बों की रोशनी न हुई, तो यह कैसे मालूम होगा कि एक आई० ए० एस० का विवाह है।—और सब ठीक है, पर शहनाई में अब क्या देर है ? बजाते क्यों नहीं ? —अरे हेम, तुम अभी तक नहाये नहीं ! मगर ठहरो, पहले उबटन लगवा लो यार। नाम के अनुरूप सोने जैसी देह कैसे जँचेगी ?—देखो भाई, ऐसे समय हेम के साथ ऐसी कोई ठठोली न करना जो उस को खल जाय।—शारदा का हाल यह था कि वह पहले सरोज के पास चाय बनवाने बैठ जाता। पहला प्याला वह जब स्वयं पी लेता, तब मेहमानों को भेजता। यही स्थिति साग-भाजी की थी। पहले जब वह पास कर देता, तब कटोरियाँ लगाई जातीं। प्रेम तो दो-दिन से सो ही नहीं पाया था। सरोज आ तो गई थी और गुल-गड़ापे के डर से थोड़ा बहुत काम भी करती रहती थी, पर सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने का उसे निषेध था। हेम की दोनों मामियाँ गीत-मांगल्य में सबसे आगे रहतीं। कभी-कभी छेड़-छाड़ और हास्य व्यंग्य के प्रकार में कलहास-ध्वनियाँ गुंजित हो उठतीं। क्षेम बच्चों को बहलाने में लगा रहता। मकान के नीचे कई कमरे खाली करा लिये गये थे। एक में मिठाइयाँ बनवाने का प्रबन्ध था, दूसरे में उनके भंडार का, जिसमें मिठाइयों के सिवा मेवा और फल संग्रहीत रहते थे। जाह्नवी के ममेरे भाई मातादीन भी आ गये थे। उनका आग्रह था कि मुझको तो इस भंडारे का ही चार्ज सौंप दिया जाय।

प्रीति-भोज का प्रबन्ध उस दिन किया गया, जब विवाह के बाद शकुन्तला हेम के घर विधिवत आ गयी। उस दिन

नगर के बहुतेरे ऐसे लोग भी आमंत्रित होकर आये थे, जिन्होंने संकोच त्यागकर स्वयं कह दिया था—'बेटे, ऐसे समय मुझको न भूल जाना।'

इस परम आत्मीय वृन्दमें वे सरकारी आफिसर भी थे, जो कभी उसके शिक्षक रह चुके थे। वे डाक्टर थे, जो मैट्रिक में हेम से एक श्रेणी ऊपर थे; ऐसे वकील थे, जिनके यहाँ हेम ट्यूशन कर चुका था। कोई सदरआला था, कोई मुंसिफ़। कोई नियोजन अधिकारी था, कोई श्रम-हितकारी-केन्द्र का अधीक्षक। शोभा के साथ पाण्डेयजी अनारकली के साथ सेठ विद्यापति और मल्लिका के साथ घनानंद।

जाह्नवी चारों ओर फूली-फूली फिरती थी। अतिथियों में जब कोई सामने पड़ जाता, सबसे पहले चाय, जलपान और भोजन के लिए समयानुसार पूछ लेती। कभी-कभी तो उसे इस बात का भी ध्यान न रह जाता कि एक बार पहले भी पूछ चुकी हूँ। ऐसे समय कुछ लोग तो हँस भी देते। कुछ यह सोचने लगते कि दीदी को प्रत्येक का कितना ध्यान रहता है। कोई-कोई इधर-उधर बोल उठता—'ऐसा अन्नपूर्णा न होती, तो क्या मैजिस्ट्रेट की माँ बन जाती।' पाँडेयजी ने सामने आते ही कहा—"दीदी मुझे भी कुछ काम बताओ।"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"आपकी ही करुणा तो चारों ओर दैदीप्यमान है।"

पुलक संचार की पावन घड़ियों में जाह्नवी को सदा अपने स्वामी नंदनंदन का स्मरण आ जाता। फलतः आँखें डबडबा उठतीं।

जिस कन्या विद्यालय में जाह्नवी अध्यापिका थी, उसकी प्रधानाध्यापिका अब एक माला चक्रवर्ती थीं। उनके साथ की सभी अध्यापिकायें भी आयी थीं। उसने शाल्मली देवी को तो आमंत्रित किया ही था, पर भूली वह मल्लिका देवी को भी न थी। शाल्मली देवी अपने स्वामी के साथ पधारी थीं। संकेत से स्वामी को उसका परिचय कराती हुई कह रही थीं—"यही मेरी वह बहन है, जिसने प्रकारान्तर से हमारे सम्बन्धों को वैधानिक बना दिया।" सच पूछिये तो हमारे विवाह का मुख्य श्रेय इसी बहन को है।

वह एक शनिवार था। मल्लिका स्नान करके कपड़े बदल चुकी थी। यकायक क्या देखती है कि शोभा के साथ जाह्नवी सामने उपस्थित है। एक हाथ में बैग है, दूसरे में कुछ निमंत्रण-पत्र हैं। शोभा के साथ वह उसी की गाड़ी पर आई है।

नमस्ते के उत्तर में हाथ जोड़कर मल्लिका ने बड़े आश्चर्य्य के साथ पूछा—"इधर कैसे भूल पड़ीं जाह्नवी ?"

जाह्नवी ने उत्तर दिया—"आपके आशीर्वाद से हेम का विवाह निश्चित हो गया है। उसी का निमंत्रण देने आई हूँ। भूल पड़ने की तो ऐसी कोई बात अब रह नहीं गई। आपके मन में भले ही हो, लेकिन विश्वास करो दीदी, मेरे मन में रंचमात्र भी नहीं है। भगवान् अगर कभी कठिन परीक्षा लेता है, तो उससे पार हो जाने की शक्ति भी देता है। आप चाहे जो समझें, पर मैं तो उस घटना को करुणामय की एक

कृपा ही मानती हूँ। फिर जो कुछ हुआ, हो गया। उसका दुःख उस समय जो कुछ हुआ भी था, वह भी अब अतीत के गर्भ में मिल गया है। मुझे पूरी आशा है कि आप उन बातों को बिलकुल भूल जायँगी। पर अगर इस अवसर पर आप न आईं, तब तो मैं यही समझूँगी कि ग्रन्थि अब तक बनी हुई है और आपने मुझे क्षमा नहीं किया है।"

मनुष्य में चाहे जितना द्वेष हो, किन्तु शालीनता के आगे वह सदा पराभूत हो जाता है। सफलता के सारे प्रयत्न एक ओर सोते पड़े रहते हैं; एक शालीनता ही तो है, जो उन सबको जगाकर, उठाकर, एक साथ खड़ा कर देती है।

मल्लिका ने एक-दो बार नहीं, दस-बीस बार यह सोचा था—'अगर जाह्नवी मुझसे एक बार भी क्षमा माँग ले, तो मैं अब भी उसे नियुक्त करा सकती हूँ।'

वही क्षण आज उसके सम्मुख था। उसने कभी ऐसी कल्पना न की थी। वह तो सदा यही समझती आई थी कि जाह्नवी ऐंठकर चलती है। उसे अपनी प्रतिभा का बड़ा अभिमान है।

एक बात और थी। जाह्नवी मल्लिका से मिलने जो कभी नहीं आई, कहीं नौकरी भी उसने नहीं की; फिर भी उसकी कीर्ति और गौरव को कोई क्षति नहीं पहुँची। उसके बच्चे बराबर पढ़ते रहे। विद्यालय की छात्राएँ भी उसके पास बराबर जाती रहीं। उनका अवलम्ब कभी नहीं टूटा। इसमें भी वह उसकी सफलता का ही भान करती रहती थी। धीरे-धीरे उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि कोई भी उसके

विरुद्ध एक शब्द कहने का साहस न करता था । यह उसकी ऐसी सफलता और विजय थी कि मल्लिका को निरन्तर अनुभव होता था, मैंने उसका अपमान नहीं किया, वरन् उसने उल्टा मेरा कर दिया है ।

उसकी इस धारणा के मूल में यही एक बात थी कि निन्दा तो सच पूछो मेरी हो रही है । उसका कुछ नहीं बिगड़ा, मेरा ही मुख उसने काला कर दिया है ।

उसने सोचा—इन दशाओं में जो विजयिनी है, आज नगर भर में 'साधना और तपस्या की मूर्ति'—चरित्र-निर्माण की अधिष्ठात्री देवी' जैसे विशेषणों से जिसका स्मरण किया जाता है, वही मेरे द्वार पर सहयोग की भीख माँगने आई है । इससे बड़ा सौभाग्य मेरा और क्या होगा !

विनयशीलता ऐसे ही अवसर पर एक अमोघ अस्त्र का काम देती है । वह उसी मर्मस्थल पर आघात पहुँचाती है, जहाँ व्रण होता है ।

फलतः वह व्रण फूट गया । मल्लिका हर्ष गद्‌गद् हो उठी । उसका कण्ठ भर आया । वह बोली—"अब तक तो मैं कुछ और समझती थी । पर आज मैं तुम्हारे सामने लज्जित हूँ । मैं जीवन की सारी बातें भूल सकती हूँ, पर यह बात मुझे सदा स्मरण रहेगी कि विरोध होने पर भी मुझे ऐसा कोई अवसर नहीं मिला जिससे कभी इस बात का पता चलता कि तुमने कहीं मेरी बुराई की है ।"

अब उसके नयनों में आँसू छलक आये थे । अधर कम्पित थे और अंतस् की मर्मवाणी थरथरा रही थी ।

अब तक शोभा भी चुपचाप खड़ी थी। आँखों से रूमाल लगाकर, शान्त हो, मल्लिका ने दोनों को आदर-पूर्वक बैठाया। शेफाली निकट आ पहुँची। बोली—"ममी, मैं चाय का आर्डर दे आई हूँ।"

मल्लिका का हाथ उसकी पीठ पर आ गया। बोली—"यह तुमने बहुत अच्छा किया शैली।" फिर जाह्नवी की ओर उन्मुख होकर उसने कह दिया—'वास्तव में आज मैं समझ पाई हूँ जाह्नवी कि एक मात्र इसी गुण ने तुमको उन्नति के इस शिखर पर पहुँचाया है। मुझे दुःख केवल इसी बात का है कि तुम्हारे इस उज्ज्वल इतिहास के साथ मेरे नाम पर धिक्कार के सिवा और कोई शब्द न होगा।"

जैसे बाँध टूट जाने पर जल-प्लावन होता है, मनोग्रन्थियाँ खुल जाने पर वैसे ही आत्मलीन करुणा झरना बन जाती है।

मल्लिका के आँसू थमते न थे। सिसकियां उभर-उभर उठतीं थीं।

जाह्नवी ने उठकर उसे कण्ठ से लगा लिया। बोली—"दीदी, बस बहुत हो चुका। सारा अपराध तो मेरा था। अपनी मनोभावना, अपनी विचारधारा, अगर मैं तुम्हें समझा सकती, तो कहीं कुछ न होता।

आँसू पोंछती हुई मल्लिका बोली—"अमृतवाहिनी जैसी यह गंगा है, वैसी ही तुम हो। वैसे चाहे इस निमंत्रण में न आती, पर अब तो मुझे आना ही पड़ेगा। न आऊँगी, तो मेरी अन्तरात्मा मुझे कभी क्षमा न करेगी।"

अब शोभा को बोलना पड़ा—"दीदी ने जब मुझसे तुम्हारे

पास चलने के लिये कहा, तब पहले तो मैं विचार में पड़ गयी थी पर मैंने सोचा चलो, इसी बहाने आप से मिल लूँगी। अप्रसन्न तो आप मुझ से भी रही हैं। यद्यपि मैंने वैसा कोई अपराध नहीं किया था। जो भी हो, अब तो आपका रोष मुझ पर न रहना चाहिये।"

मल्लिका ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"वैसे मैं आपको कभी क्षमा नहीं करती। पर अब···अब वैसी कोई बात नहीं रह गयी।"

फिर चाय पीकर जाह्नवी जब चलने लगी, तब मल्लिका ने कह दिया—"मेरे लायक जो सेवा हो, निस्संकोच कह देना जाह्नवी। तुम्हारे साथ एक क्षण का सहयोग मेरी आत्मा की शान्ति के लिए औषध बन जायगा। इसके सिवा मैं अपने गौरव का भी अनुभव करूँगी।

फिर ऐसा भी एक क्षण आया—"जब भाई का नाता रखने वाले लोग बहिन को कुछ उपहार भेंट करते हैं। सगे भाइयों की बात अलग है, वे जो कुछ दे दें, थोड़ा है। पर ऐसे कितने हैं, जो भाई न होने पर भी उसका नाता निभाने में कोई कमी नहीं रखते ?

परमेश्वरी बाबू उन्हीं में से थे। साड़ियों, कपड़ों, फलों, मेवा-मिठाइयों के रूप में वे जब लगभग पाँच सो रुपये की सामग्री ले आये, तब सभी उपस्थित नर-नारी, किशोर-प्रौढ़ चकित हो उठे।

जाह्नवी पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। केवल इस भय के कारण वह कुछ न बोली कि कहीं इस वृन्द के सामने परमेश्वरी बहस न करने लगे।

कुछ लोगों ने पूछा—"ये कौन हैं ?"

निस्संकोच जाह्नवी बोल उठी—"ये मेरे मुँहबोला भाई हैं। एक बार गाड़ी में भेंट हो गई थी। वार्तालाप में मैंने हेम से कह दिया—मामा को नमस्कार करो। बस, तभी से ये मुझ से भाई का नाता मानते जाते हैं।"

सब ने परमेश्वरी बाबू की प्रशंसा की। कोई बोला—"वाह क्या बात है !"

फिर किसी व्यक्ति ने यह भी कह दिया—"सतयुग की बात दूसरी थी पर इस कलियुग में भी ऐसे भाई बने हैं, यह देखकर बहुत आश्चर्य्य होता है।"

संयोग से इसी समय फिर किसी ने इस बात पर मुहर लगा दी। कह दिया—"ऐसे ही देवात्माओं से यह धरती सधी हुई है। नहीं तो पाप के भार से रसातल में न चली जाती !"

इस प्रकार जब हेम का विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया; तभी एक दिन रात होते-होते जाह्नवी को ज्वर आ गया।

ज्वर साधारण न था, वह मरण था। अभी तीन दिन पूर्व जो लोग प्रीतिभोज में आये थे, वही अब जाह्नवी का लीला-संवरण देखने आ पहुँचे थे। सारा घर मेहमानों से भरा

था, सारा द्वार पड़ोसियों से भरा था। द्वार के आगे जो तख्त आमन्त्रित व्यक्तियों की सुविधा के लिये अब तक पड़े थे, वे सब भर गये थे। एक डाक्टर साहब जाह्नवी के निकट म्लानमुख सिर झुकाये चिंतित खड़े थे। हेम दीवार के सहारे खड़ा सिसक रहा था। शकुन्तला उसके पास बैठी हुई आँसू गिरा रही थी। क्षेम जाह्नवी के चरणों के निकट खड़ा कह रहा था—"हाय अब क्या होगा !"

शोभा रूमाल लिये सिरहाने खड़ी आँसू पोंछ रही थी। कभी-कभी मल्लिका उससे कह उठती—"मुझे तो ऐसा जान पड़ता है जाह्नवी चली जायगी। वह रुक नहीं सकती। उसका कार्य-काल पूरा हो गया है।"

इतने में अनारकली आ पहुँची। उसके केश बिखरे हुए थे और सितारों जड़ी साड़ी भूमि पर लिथर रही थी। आते ही उसने पुकारा—'जाह्नवी ! जाह्नवी !' पर अब वहाँ कौन सुनता था ! यद्यपि प्रलाप थोड़ी देर को रुक गया था। रोती हुई महालक्ष्मी उसके निकट आकर कह रही थी—"चली जाओगी जाह्नवी ? हमारे अपने कन्या-विद्यालय की प्रधान अध्यापिका बने बिना ही चली जाओगी जाह्नवी ? हाय मैंने तो केवल तुम्हारे लिए ऐसा साहस किया था।"

इतने में जाह्नवी फिर प्रलाप कर उठी—"परमेश्वरी भैया! परमेश्वरी भैया कहाँ गये ? अरे कोई बुलाओ उनको।"

परमेश्वरी बाबू निकट पहुँच गये। बोले—"मैं आ गया बहिन। बतलाओ, कहो, मेरे लिये क्या आदेश है ?"

परमेश्वरी बाबू गम्भीर तो बहुत हो रहे थे, किन्तु उनकी

आँखों में अश्रु नहीं थे ।

जाह्नवी कह रही थी—"देखो, वह देखो, मृत्यु की छाया मुझे बुला रही है । वह···वह—देखो, मुझ से कहती है—चलो जाह्नवी, घण्टी बज गयी । तुम्हारे स्वामी तुम्हें बुला रहे हैं । परमेश्वरी भैया, तुम उनसे मिलोगे नहीं ! अब अन्धकार बढ़ने लगा है । कहीं कुछ नहीं है । फिर भी—लो, वे स्वयं आ पहुँचे ! हटो, मुझे जाने दो—मुझे जाने दो ।"

फिर फुसफुसाती हुई धीरे से कहने लगी—कलियुग की बात ठहरी । कोई किसी का मुँह तो बन्द कर नहीं सकता । कोई भाई-बहिन का नाता भी रखना चाहे—तो—तो यह मक्कार दुनिया (होंठ काटती हुई) उसमें कलुष खोजती है ! परमेश्वरी भैया, आओ चलो । तुम्हें तो मालूम है, मेरी लाज उन्हीं के साथ है । उनके बिना (एक निःश्वास के साथ) उनके बिना मैं व्यर्थ हूँ—मेरा कोई मूल्य नहीं !—हटो, रास्ता दो मुझे । मैं जाऊँगी । मैं जा रही हूँ । मैं जा रही हूँ ।

प्रलाप के साथ वह उठ बैठती और भागने को सचमुच तत्पर हो जाती । शोभा, मल्लिका आदि कई स्त्रियों ने जब उसे सम्भाला, तब वह सम्हल पायी !

अन्त में सब कुछ समाप्त हो गया, जाह्नवी चली गयी । लोग पछाड़ खा-खाकर रो पड़े । एक ऐसा क्रन्दन घर-द्वार में व्याप्त हो गया कि दस-पांच मिनट तो उस हाहाकार में ही विलीन हो गये ।

जिस व्यक्ति ने परमेश्वरी और जाह्नवी के—भाई-बहिन के—नाते पर आश्चर्य्य प्रकट किया था, अन्त में वह भी रो

पड़ा ।

प्रकृति जड़ होती है । रुदन और क्रंदन की भी एक सीमा है । धीरे-धीरे लोग स्थिर होने लगे । तब उस सन्देहशील व्यक्ति को यह स्वीकार करते लाज न आयी—"जाह्नवी सचमुच देवी थी । उसकी तेजस्विता ही उसे उठा ले गयी । मैं ऐसा नहीं जानता था ।"

फिर हेम के जो सगे मामा थे, प्रेम और महेश था, सब मिल-मिलाकर जाह्नवी की अर्थी सजाने लगे ।

लिप्सा का अन्त नहीं है । मृत्यु तक को अनुरूप शृंगार चाहिये । हेम शकुन्तला के पास जाकर कह रहा था—"वह दुशाला तो लाना शकुन्तला, जो अम्मा के लिये तुम्हारे यहाँ से आया था ।"

अर्थी सज रही थी । दुशाले पर खादी के बने गुलाब के दल बिखर गये । गली-कूचों, अटारियों और छज्जों, चबूतरों और दरवाजों से नाना नर-नारियों का एक स्वर गूँज रहा था "जाह्नवी जा रही है !—वह, वह गयी !—वह चली गयी !"

दाह-संस्कार हेम ने किया । श्मशान पर भी जब कुछ लोग रोने लगे, तो हेम बोला—"यहाँ मृत्यु अपना पर्व मनाती है । यहाँ रोना मना है । कोई मत रोओ ।"

अन्त में जब सब लोग चल दिये, तब मल्लिका के आँसू न रुक सके । क्षण भर बाद एक निःश्वास के साथ वह बोल उठी—"मृत्यु एक दिन सब को आती है । पर ऐसी गौरवपूर्ण मृत्यु !"

जीवन-साफल्य की सबसे बड़ी कसौटी बस यही है कि

प्रतिस्पर्द्धी और शत्रु भी उसके लिए आँसू बहाये और उसकी महानता स्वीकार करे।

इस भीड़-भाड़ में किसी को कुछ ध्यान न रहा कि परमेश्वरीलाल कहाँ रह गये। वे फिर लौटकर घर नहीं पहुँचे।

दिन बीतते गये। महेश ने बहुत खोज की, पत्रों में विज्ञापन भी छपवाया, पर वे लौटकर नहीं आये—नहीं आये।

—:o:—